

यथा व्रजगोपिकानाम्

स्वमन्तव्यांशसिद्धान्ततुषार

मधुराद्वैताचार्य श्रीगुलाबराव महाराज

म धु र प्र का श न

गोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज

कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्

व्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज

कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्

यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज

कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्

यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज

कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्

यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज

कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्

यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज

कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्

यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज

कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्

यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज

कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्

यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज

कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्

यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथा

कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्

कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज
कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज
कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज
कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज
कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज
कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज
कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज
कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज
कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज
कानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रज

श्रीगुलाबरावमहाराजविरचित

स्वमन्तव्यांशसिद्धान्ततुषार

(सूक्तिरत्नावलि : षष्ठयष्टि)

तृतीय आवृत्ति

★

मधुर प्रकाशन ~ षष्ठाविष्कार

★

कात्यायनीव्रत

कलिवर्ष : ५०६५

★

दीड रुपया.

प्रकाशक:—
प्र. भा. चांदले, व्यवस्थापक,
मधुर प्रकाशन, बडकसचौक,
महाल, नागपूर. २.

प. महाराष्ट्रमे विक्रेता:—
हिंदुस्थान साहित्य,
३०९, शनिवार पेठ,
मोतीबाग, पुना २.

★

★

पुस्तिकावृत्ति

१०००

★

मुद्रक:—
म. बा. बोकारे,
गोपाल प्रिंटिंग प्रेस,
महाल, नागपूर २.

कात्यायनीव्रत
शके १८८५
नोव्हेंबर १९६३

॥ श्रीज्ञानेश्वरमाऊली समर्थ ॥

प्रस्तावना

विदर्भप्रान्तान्तर्गत अमरावती जिलेमें माधान नामक एक ग्राम है। इस ग्रंथ के कर्ता श्रीगुलाबराव महाराज इसी ग्राम के निवासी थे। महाराज का जन्म इसी ग्रामके अधिपतीके कुलमें हुआ। इनका जीवनचरित्र अलौकिक तथा अत्यंत आश्चर्यकारक रहा। वह विस्तार पूर्वक ग्रंथरूपमें प्रकाशित है। अत एव उसका यहां कोई उल्लेख अनावश्यक है। तोभी यहाँ इतना कहना अनुचित न होगा की महाराज जन्मांध थे। वे शूद्र थे। सब वेदान्तविद्या इन्हें जन्मतः प्राप्त थी। वे श्रीज्ञानेश्वर महाराजको अपनी जननी और श्रीकृष्ण परमात्माको अपना पति मानकर अपना समय योग, ज्ञान, भक्ति और वैराग्यकी चर्चा करने तथा इन विषयों पर ग्रंथ लिखाने में व्यतीत करते थे। इस हिन्दी के अतिरिक्त मराठी में भी श्रीमहाराजके पंद्रह–सोला ग्रंथ प्रकाशित हो चुके है। वे सब स्वयंस्फूर्तीसे हुए हैं। उनमेंसे कोई ग्रंथ छंदोबद्ध तो कोई गद्यबद्ध होते हुए भिन्न भिन्न विषयों से परिलुप्त हैं। यह ग्रंथ हिंदी में संवादात्मक रूपमें लिखा गया है। श्रीमहाराजने अपने ग्रंथको "सूक्तिरत्नावली" नामसे निर्देशित किया है। और यह सूक्तिरत्नावलीका षष्ठ यष्टि है। आपका और एक हिंदी ग्रंथ है, जिसका नाम "मनोहारिणी" है। यह भगवद्गीता पर जो कुछ आपके व्याख्यान हुए उनका संकलन मात्र है।

इस ग्रंथमें भक्तिस्थापन करने का अधिकारी कौन, आपका जन्म किस हेतु हुआ है, भक्तीका स्वरूप क्या, भक्ति व उपासना में क्या भेद है, भक्तीकी अधिष्ठात्री देवता श्रीकृष्णहि कैसे होते है, श्रीकृष्ण पूर्णावतार है या नहीं, पूर्णावतार का स्वरूप क्या है, ज्ञानप्राप्ती से क्या लाभ है, अज्ञान क्या है और विक्षेप किसे कहते है, उनका विराम कैसा होता है, भक्तीसे ही पुरुष कैसा पूर्ण होता है इत्यादि कई प्रश्नोंका निर्णय श्रुतिस्मृतिपुराण आदिके प्रमाण देकर तथा युक्तीसे सिद्ध किया गया है।

यह ग्रंथ बडे महत्वका है। वह श्रीकृष्ण भक्तिके मंडनार्थ लिखा गया है। यह ग्रंथ पढकर मनन करे तो पाठकों के मन में ज्ञानरूप प्रकाश पडकर श्रीकृष्ण भगवान उन्हें आगामी मार्ग दिखाये बिना न रहेंगे यह हम दृढता पूर्वक कह सकते है।

इति शम्।

प्रकाशक

श्रीबाबाजी महाराज पंडित लिखित

पुस्तकोंकी सूची

अ. नं.	ग्रंथों का नाम		किमत
१	हरिपाठरहस्य		३=००
२	अमृतानुभवकौमुदी		६=००
३	श्रीज्ञानेश्वरी गूढार्थदीपिका	खंड १	५=००
४	,,	खंड २	७=००
५	,,	खंड ३	७=००
६	,,	खंड ४	७=००
७	,,	खंड.५	६=००

अन्य पुस्तकें

१	श्रीगुलाबरावमहाराज इनका जीवन चरित्र	खंड १	३=५०
२		खंड २	३=७५

प्राप्तव्यस्थान :

श्रीज्ञानेश्वर संस्थान,
दहीसात, अमरावती
(महाराष्ट्र)



मधुर प्रकाशन,
गोपाल प्रिंटिंग प्रेस,
वाकररोड, नागपुर-२.
(महाराष्ट्र)

।। श्रीज्ञानेश्वर माउली समर्थ ।।

वंदन

नमः श्री आदिनाथाय नमो मत्स्येंद्ररूपिणे ।
गोरक्षप्रभवे गहनीनाथायाथ निवृत्तये ।।
परंब्रह्म परंधाम सच्चिदानंदविग्रहम् ।
ज्ञानेश्वरमिति ख्यातं प्रणमामि गुरुं हरिम् ।।
ज्ञानेशो भगवान् विष्णुर्निवृत्तिर्भगवान हरः ।
सोपानो भगवान् ब्रह्मा मुक्ताख्या ब्रह्मचित्कला ।।
यद्वस्तु तत्सच्चिदकापकारि
भक्त्यर्थमेवावयवीवभूतम् ।
ज्ञानेश्वराचार्य पदं हृदब्जे
बिभ्राजते तन्मुनयो विशन्ति ।
उमा माता पिता शंभुर्गुरुर्ज्ञानेश्वरो महान् ।
पतिः कृष्णो राधिकाद्या भगिन्यो गोपिका मम ।।
पंचायतनमित्येतत् हृद्या स्थाप्य प्रपूज्य च ।
नमस्कृत्वा च याचेऽहं ज्ञानेश्वरसुतानुतिम् ।।

श्रीगुरुस्तुति

वृत्त–सामनुषृप रा–भूप–ताल–तेताला

श्रीज्ञानेश्वर गुरुनाथ हमारे ।।धृ०।।
सोही गणेश विघ्न के हर्ता । तिनपग सीस उधारे
।। ज्ञानेश्वर ।।१।।

सोहि शारदा मति के दायक । बैठे बाणि हमारे
।। ज्ञानेश्वर ।।२।।

सोहि सद्गुरु जीव ब्रह्मकर । महावाक्यमें रहै सिधारे
।। ज्ञानेश्वर ।।३।।

सोहि संतसमाजसरूप है । व्यापक जगजगमांही बिहारे
।। ज्ञानेश्वर ।।४।

सोहि तुम श्रोते सज्जन हो । श्रवण करो हरिचरित सुधारे
।। ज्ञानेश्वर ।।५।।

ज्ञानेश्वरप्रभु तातमातगुरु । मम हिरदें तिनके पगधारे
।। ज्ञानेश्वर ।।६।।

रमावृत्त. राग–काफी–ताल–तेताला

श्यामको देखत मोह गिरे ।।धृ०।।

श्रुतिसंभव भवनाशन कारन । मोतनछबि सुभरे
।। श्यामको ।।१।।

कटि कनकांबर गल बनमाला । तांबुल मूख धरे
।। श्यामको ।।२।।

ज्ञानेश्वरप्रभु तातकृपासे । नंदज पग पकरे
।। श्यामको ।।३।।

रंभावृत्त. रा. दरबारी कानडा-ताल-राजविद्याधर तेताला

गुरुबिन हरिगुन रंग न पावे ॥धृ०॥

हरिध्यानतें गुरु नहिं मिलते । गुरु सुमिरनतें हरि घर आवे
॥ गुरु ॥१॥

दुष्टको मारन भक्तन तारन । हरि अपने दिल भेद लखावे
॥ गुरु ॥२॥

गुरु दुर्जनकूं सुजन करतु है । हरिसों अधिक गुरुहि हिय भावे
॥ गुरु ॥३॥

विठ्ठलनंदन विठ्ठल से । सज्जन वदन अधिकतम गावे
॥ गुरु ॥४॥

दोहा

बडे प्रेमतें एक घडी खडा सद्गुरुद्वार ।
तिसका चारों मुक्ति करत निःसाधनहि स्वीकार ॥





श्री गुलाबराव महाराज

तैसी दशेची वाट न पाहतां । वयसेचिया गांवा न येतां ।
बाळपणींच सर्वज्ञता । वरी तयातें ।। (ज्ञानेश्वरी ६·४५३)

॥ श्रीज्ञानेश्वरमाउली समर्थ ॥

स्वमन्तव्यांश सिद्धान्ततुषार

मंगलाचरण

यह ग्रंथ पठन करनेके आदौ मेरे प्राणप्रिय श्रीकृष्ण तिनके वैभवको चरणदासादि साधुओंके बचनतें जिज्ञासुओंने जथार्थ जानना अवश्य हैं. एते ते बचन यौं है.

१ शुकशिष्यस्वामीचरणदासकृत व्रजचरित्रवर्णन.

दोहा:–चारी वेद तुमकूं रटैं शिव शारदा गणेश ।
और न शीस नवायहूं श्रीकृष्ण करो उपदेश ॥
कै गुरु कै गोविंद कै भक्ति कै हरिदास ।
सबहुनके एकहि गिनू यथा पुष्प अरु बास ॥
नारदमुनि अरु व्यासजी करिये कृपा दयाल ।
अक्षर भूलौं जो कहीं कहौं मोहि तत्काल ॥
श्रीशुकदेव दयाल गुरु मम मस्तकपर ईश।
व्रजचरित्र मैं कहत हूं तुमहि नवाये शीस ॥
सब साधुन परणाम करी कर जोरू शिर नाय ।
चरणदास बिनती करैं बाणी देहु बनाय ॥

व्रजका मुख्यत्ववर्णन.

दोहा:–सदा शंभु व्रजमें रहे करी गोपींको रूप ।
मुरती तो परगट भई आप रहत है गूप ॥
बंशिवट ढिग रहत है करत रहत है ध्यान ।
वक्ता वेदपुराणके परम पुरातन ज्ञान ॥
ब्रह्मादिक कलपत रहै वृंदाबनके हेत ।
सुधि आये व्रजभूमिकी बिसरि जाय सब बेत ॥

व्रजवर्णन.

चौपाई:–अब व्रजकी गति गाय सुनाऊ। बुद्धि शुद्धि हरिभक्ति जु पाऊं।
चिता मेट न भूमि बखानी। रण जितमित जहँ दुर्ग बिनानी॥

व्रजमंडलका प्रलयमेंभी नाश नहीं होवेगा. क्यौं की, वो श्रीकृष्णने सुदर्शनचक्रपर धरा है, ऐसा चरणदासने दृष्ट है. अरु **'मम साधर्म्य-मागताः ।' 'प्रलये न व्यथंति ते'** । इस वचनतें भक्तसमुदाय व्रजका नाश नहीं होता, यह सिद्ध है.

चौः––कमलापतिको चक्र सुदर्शन । चरणदास ताको करै वंदन ।
मथुरामंडल तापर रहै । व्यासदेव मुनि ऐसा कहै ॥

२ व्रजमंडल सुदर्शनपर धऱ्या है, यह व्यासजीनें वाराह संहितामें कह्या, ऐसा निरूपण.

चौः––श्रीवाराहसंहिता गायो । सों मै भाषाबीच बनायो ।
गोवर्धनमहिमा अतिभारी । चरणदास ताके बलिहारी ॥
जाकी महिमा सबहि न गाई। जहां कृष्ण नित गौ चराई ।
खरिक बनाय धेनु जहं राखी । अजहुं चिन्ह देत है साखी॥

दोहा:-गोवर्धन बिनती करू मो बिनती सुन लेहू ।
जगद्भास सो काढिकरी भक्तिदान मोहि देहू ।।

चौ:—हाटकरूप अडोल खरारी । जाके शरण रही व्रज सारी ।
ता दिन इंद्र सकोप पठायो । सकल मेघ झुकी व्रजपर आयो ।।
करपल्लवपर गिरि हरि धारो । तबही शरण रहो व्रज सारो ।।

३ यह संपूर्ण लीला नित्य है, परंतु अतींद्रिय दृष्टिबिना नही दिखती है, सो सब जथार्थ वर्णन.

चौ:—दिव्यदृष्टिबिन दृष्टि न आवै । कंचनरूप पुराण बतावै ।।
मथुरामंडलमें गिरि सोई । मथुरामंडल अब सुनि लेई ।।
चौरासी क्रोश परमाना । मथुरामंडल व्यास बखाना ।।
हरिके चरण सदा जो परसै । कृष्णरूपमें निशिदिन सरसै ।।

व्रजस्थ भगवल्लीलावर्णन

चौ:—सखा संग लीन्हे हरि डोले । सखियनके संग करत कलोले ।।

समीपही वियोगवर्णन

दोहा:--सदा कृष्ण व्रजमें रहै मोहि मिलत है नाहीं ।
लहर मिहर कबहु करैं आनि गहें मम बाही ।।

व्रजस्थवनोपवनवर्णन.

चौ:—जामे बारह बन बडभागी । बारह उपबन है अनुरागी ।
जिनमाहीं हरि बेणु बजावै । मधुर मधुर बांके सुर गावै ।।
सो सगुणही भगवान् परवैराग्यादि गुणसे अरु माया साक्षी, तातें तुर्याविशिष्ट ईशिता कहा जावे है.

४ "विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्य:" (श्वेताश्वतर. अध्याय ५)
"एष ते आत्माऽन्तर्याम्यमृत:" (बृहदारण्यक. ब्राह्मण ६)

इत्यादि श्रुतियोंसे

भगवानका स्थल और तिसको देखनेका उपाय.

चौ:—चौथे पदको है वह स्वामी । सब जीवनको अन्तरयामी ॥
भक्तनहेतु रहै व्रजमाही । गुप्त रहै वृंदावनठायीं ॥
फिरत रहै सबही बन सुंदर । अन्तर बनो रासको मन्दर ॥

यह ज्ञानकी रीतीसे सिद्ध भया. अरु अन्वयरूप ध्यानकी रीतीभी इसी पद्यमें कथन कीन्ही है. इसके उपरांत जो पद्य है, तिसमें भगवान्, तिनका प्रिय स्थल, सो सब देखनेका उपाय, अरु देखनेवालेका लक्षण, एतत् चतुष्क निरूपित है.

चौ:—जगतदृष्टिसो रहे अलोपा । मिलि है ताहि ध्यान जिन रोपा ॥

५ व्रजमंडलका दृश्यत्व निराकरण करके अदृश्यत्व, साकारत्व, नित्यत्व, यह अतींद्रिय दृष्टीसे निश्चय करकें देख पडता है ऐसा वर्णन.

चौ:—मथुरामंडल परगट नाही । परगट है सो मथुरा नाही ॥
मथुरामंडल यही कहावै । दिव्य दृष्टिबिन दृष्टि न आवै ॥

सा दिव्यदृष्टि भक्तीसे प्रकाशित होती है.

दोहा:—बन उपबन अब कहत हूं मथुरामंडलमाहीं ।
बिनाभक्ति व्रजनाथकी कबहूं दीखत नाहीं ॥

ये व्रजवर्णन श्रीव्यासविरचित वाराहसंहिताका भाषांतर होनेसे आप्तवचनपक्षियोंको प्रमाण है, और अनुभवसे प्रमाण है, यह हमारा पूर्ण निश्चय है.

६ व्रजजनोंके विरहभक्तिवर्णनमें सुंदरदासके यह बचन है.

कबित्तः---पीयको अंदेशो भारी, तोसूं कहूं सुन प्यारी ।
यारी तोरि गये सो तौ, अजहुँ न आये है ॥
मेरे तो जीवनप्राण, निशिदिन ऊहै ध्यान, ।
मुखसूं न कहूं आन, नैनउर लाये है ॥
जबतें गये बिछोहि, कलन परत मोहि ।
तातें हूं पूछत तोहि, किन बिरमाए है ॥
सुंदर विरहनीको, शोच सखि बार बार ॥
हमकू बिसार अब, कौनके कहाये है ॥१॥

७ अपने विरहतें आरोपित कियी हुई भगवद्दशावर्णन

कबित्तः– हमकू तो रैनदिन, शंका मनमाहीं रहै ।
उनकी तौ बातनिमें, ढंगहु न पाइये ॥
कबहूं संदेशा सुनि, अधिक उछाह होइ ।
कबहुंक रोइ रोइ, आंसुन बहाइये ॥१॥
औरनके रसवश होइ, रहे प्यारे लाला ।
आवनकी कही कही, हमकू सुनाइये ॥
सुंदर कहत ताहि, काटियेसु कौन भांति ।
जोइ तरु आपनेसु हातथे लगाइये ॥२॥
मोसूं कहे औरसोही, बासूं कहे औरसोही ।
जाकूं कहै ताहिके, प्रतीत कैसे होत है ॥
काहूंसूं समास करै, काहूंसूं उदास फिरे ।
काहूंसूं तौ रसवश, एकमेक पोत है ॥१॥

दगाबाजी दुबधा तौ, मनकी न दूर होई ।
काहूंके अँधेरो धर, काहूंके उद्योत है ।
सुंदर कहत जाके, पीरसो करै पुकार ।
जाके दुःख दूर गये, ताको भई वोत है ॥२॥

८ विरहमें उपर दुःखाभास और अन्तर परमानंदप्राप्तितें विस्मयदशावर्णन.

कबित्तः– हिये और जिये और, लिये और दिये और ।
किये और कौनसूं, अनूपपाटी पढे है ॥१॥
मुख और बैन और, नैन और तन और ।
मन और काया सब, यंत्रमाहि कढे है ॥२॥
हाथ और पाँव और, शीशहूं श्रवण और ।
नख शिख रोम रोम; कलईसूं मढे है ॥३॥
ऐसी तो तौ कठोरतान, सुनि नहि देखी जग ।
सुंदर कहत कोइ, व्रजहीके गढे है ॥४॥

९ अब संयोगवियोगभक्तीमें अस्मद्भुगिनीके वचन. संयोगदशावर्णन.

पदः—जबसे मोहि नंदनंदन दृष्टि परो भाई । कहां कहूं अनूपम बाकी छबि बरणी नहिं जाई ॥१॥ मोरनकी चंद्रकला शीस मुकुट सोहै । केशरको तिलक भाल, तीन लोक मोहै ॥२॥ कुंडलकी झलकन कपोलपर छाई । मानो मीन सखर तजि मकर मिलन आई ॥३॥ ललित

भृकुटि तिलक भाल चितबनमें टौना। खंजन अरु मधुप मीन भूले मृग छोना ॥४॥ सुंदर अति नासिका सुग्रीव तीन रेखा। नटवर प्रभु वेस धरे रूप अति विशेषा ॥५॥ हँसन दशन दाडिमद्युति मंद मंद हांसी। दमकि दमकि दामिनि द्युति चमकी चपलासी ॥६॥ क्षुद्र घंटिका अनूप बरणी नहीं जाई। गिरिधर प्रभु चरणकमल मीरा बलि जाई ॥७॥

वियोगदशावर्णन.

पदः—कहीं देखोरी घनश्यामा ॥टेक॥ मोरमुकुट पीताम्बर सो है, कुंडल झलके काना। सांवरी सुरतपर तिलक बिराजै, तिसमैं लगै मोरे प्राना ॥ कहीं० ॥१॥ बरसानेसों चली गुजरिया, नन्दग्रामको जाना। आगे केशव धेनु चरावै, लगै प्रेमके बाना ॥कहीं०॥२॥ सागर सुखि कमल मुरझाना, हसां कियो पयाना। भौंरा रहि गये प्रीतिके धोके, फेर मिलनको जाना ॥ कहीं० ॥ ३ ॥ वृन्दाबनकी कुंजगलिनमें नूपुर रुनझुन लाना। मीराबाईको दर्शन दीजो, व्रज तजि अनत न जाना ॥ कहीं०॥४॥

॥ श्रीज्ञानेश्वर माउली ॥

स्वमन्तव्यासिद्धान्ततुषार.

दोहा:-बंदौ चरनन जोरिकर श्रीपति गौरि गणेस ।
पंचायतन पूजने नमो महेश दिनेश ॥१॥
ज्ञानेश्वर करुणाघन कारण जगदोद्धार ।
तिनकी कृपा नंदसुतकंठ डारुंगी हार ॥२॥

चौ:-बंदौ ज्ञानेश्वर गुरुनाथा । राखो करुणाकर मम माथा ।
दुर्जनकृत निजकांताऽऽरोपा । हरन करी वारो मम तापा ॥१॥

सखिवचन:-

१ प्रश्न:-तुम कौन हो ?
उत्तर:-मै ज्ञानेश्वरकन्या और कृष्णपत्नी हूं.
२ प्रश्न:-तुम्हारा जगतमें आनेका क्या प्रयोजन है ?
उत्तर:-भक्तिस्थापनका यथाशक्ति प्रयत्न करना.
३ प्रश्न:-भक्तिस्थापन करनेकी किनकी आज्ञा है ?
उत्तर:-श्रीभगवान् नारदाचार्यजी मुनीकी. एक समय वे महाराज जगदटन करते व्रजभूमीसमीप प्राप्त भये. तहां एक तरुण स्त्री और दो बुढ्ढे पुरुष देखे. तिस स्त्रीके दास्य करने औरभी बहुत सुंदर स्त्रिया थी. तिस बालाको

भगवानने पूछे की तूं कौन है ? तदा सा बोली, मै भक्ति हूं. और ये दो जरठ पुरुष ज्ञान और वैराग्य नामके मेरे लरके है. और ये स्त्रियां मेरे दास्यके कारण प्राप्त भयी गंगा आदि सरितायें है. तदा भगवान् बोले की, तेरे बालकोंको चेतन करनेके लिये मैं उपायचिंतन करतां हूं. तूं यहांही बैठ. मै तुजको सुखी करके कलजुगमेंभी गृहगृह, जनजन, वनवन, आदि स्थानोंमें स्थापन करूंगा. तबही मोको बैष्णव कहना, इतना कह भगवान नारदमुनि भगवान सनत्कुमारजीको जा मिले. और तिनके हातसे ज्ञानयज्ञं भागवतसप्ताह किया. सुरवरमुनि श्रवण करनेको आवते भये. तब अपने तरुण लरकेकों लेकर भक्तिभी तहां प्राप्त भयी. और भगवान् श्रीकृष्णजीभी आन पहुंचे. सप्ताहानंतर जब कीर्तन भया, तब भगवान् संतुष्ट व्हयके भक्तीको वरप्रदान किया; की मेरे जो त्रैकालिक जन है, तिनका तूं पोषण कर. तदा सा भक्ति सब संतोंके हृदयमें प्रवेश करती भयी. एषा कथा पद्मपुराणमें प्रसिद्ध है. जातें यह सिद्ध भयी की, भगवद्भक्तोंके मुखसेही भक्ति जगतमें प्रविष्ट होती है. तैसी भागवतसेभी होती है. क्योंकी उस समय भक्तीने भागवतमेंभी प्रवेश किया था. अरु उद्धवकी प्रार्थनासे हमारे कांत भागवतमेंही रहे. इसलिये संत और भागवतकेद्वारा प्रभु नारदजी भक्ति स्थापन करते है.

४ प्रश्नः–'भक्ति' शब्दका अर्थ क्या है ?

उत्तरः–'**सात्वस्मिन्परमप्रेमरूपा**' ईश्वरके विषय परम प्रेमरूप होना.

५ **प्रश्नः**–'परम' शब्दकी अपेक्षा कोई 'गौण' प्रेमभी अपेक्षित है ?

उत्तरः- हां. जो परमेश्वरविषयक कुछ संबंधको उत्पन्न करता है, ओ परमकी अपेक्षा गौण प्रेम है. '**तस्यैवाहं**' '**ममैवासौ**' इत्यादि संबंध मधुसूदनकृत 'भक्तिरसायनमें' प्रसिद्ध है.

६ **प्रश्नः**–अब परम प्रेम क्या है, सो कहो.

उत्तरः- जैसे की माहात्म्यज्ञानके अनंतर गोपिकाओंको उत्पन्न भया था. '**यथा व्रजगोपिकानाम्**' (नारदसूत्र) इस सूत्रका जिसकू प्रमाण है, सो परम प्रेम है. '**स एवाहं**' इत्यादि 'भक्तिरसायन' वाक्यतें ताकी सिद्धि होवे है. '**स एवाहं**' यह वाक्य परम प्रेमकी नित्यताके अपेक्षा कहा है. केवल अहंपूर्वक ब्रह्मनिष्ठताके अर्थ नहीं.

७ **प्रश्नः**–तिस प्रेमका विषय कौन है ?

उत्तरः–श्रीकृष्ण. नारदजीनें व्यासकू अपनी पूर्वजन्मपूर्वक कथा कही. और तिसको भागवत करनेकी आज्ञा दीनी. उसमें प्रेमका विषय श्रीकृष्ण है, ऐसा सिद्ध किया ह. शुकाचार्यजीकोभी व्यासजीने श्रीकृष्णभक्तीका उपदेश किया. वे ब्रह्मनिष्ठ होकेभी अहेतुक सगुणभक्ति करते है. अरु '**यथा व्रजगोपिकानाम्**' इत्यादि सूत्रोंमें नारदजीने श्रीकृष्ण-

भक्तोंके उदाहरण लिये है. इत्यादि अनेक हेतुतें भगवान् नारदाचार्यजीको श्रीकृष्णभक्तिही अपेक्षित है. अरु नारदजीने अंतिम सूत्र लिखा है, तिसमें शिव आदि सब संतोंकी भक्ति स्थापन करनेकी इष्टता कही है.

८ **प्रश्न**:–क्या, इसकू कोइ श्रुति प्रमाण है ?

उत्तर:–हां. श्रीकृष्णोपनिषत्, गोपालपूर्वतापनीयोत्तर-तापनीय प्रसिद्धही है.

९ **प्रश्न**:–उपनिषत् तो रामतापनीय, नृसिंहतापनीया-दिकभी है. तो श्रीकृष्णभक्ति क्योंकर वरिष्ठ भयी? और उसकोही क्यौं स्थापन करते हो ?

उत्तर:–' कृष्णोपनिषद् ' में, सब मुनियोनें रामते आलिंगनस्पृहा कीनी थी; तब वे बोले की, 'तुम सब कृष्णा-वतारमे गोपिका बनकर मेरा आलिंगन करना. ' ऐसी कथा है. जातें, श्रीकृष्णावतारमेंही हृदयालिंगनकी शक्ति प्रतीत होती है; अन्यमें नही. यद्यपि अगस्तिसंहितामें रामके विषय पतिभक्ति करना लिखा है, तथापि सा पुष्टिविषयिणी नहीं किंतु मर्यादाविषयिणी है. और कृष्णोपनिषदंतर्गत मुनीच्छा तौ पुष्टिविषयिणी है. जातें श्रीकृष्णभक्तिश्रैष्ठ्य सिद्ध भया. इस लिये मुनिमहाराज श्रीकृष्णभक्ति स्थापना करते है. और '**कृष्णाय देवकीपुत्राय**' इत्यादि 'सामवेदिया' भी श्रुति है.

१० **प्रश्न**:–तो राम, नरसिंहादिक अवतारोंका कुछ उपयोग नहीं ?

उत्तरः-उपासना करनेके लिये तिनका उपयोग है.

११ प्रश्नः-उपासना क्या है ?

उत्तरः-सत्ववृद्धि और विक्षेपनिवृत्तीके लिये जे ईश्वरविषयक अंतर्बाह्य कर्म तिनका नाम उपासना है.

१२ प्रश्नः-तो भक्तीका लक्षण क्या प्रेमही है ?और ओ श्रीकृष्णविषयकही होना चाहिये ? और नारदजीकी वैसीही आज्ञा है ?

उत्तरः-हां. तुमने कहा यहही ठीक है. मैंभी भगवान् नारदाचार्यरूप भगवान श्रीज्ञानेश्वरतातमुखद्वारा मिली हुयी आज्ञाको, अरु 'नारदीयसूत्र' द्वारा मिली हुयी आज्ञाको पालनकरी श्रीकृष्णभक्ति स्थापन करनेका यत्न करती हूं.

१३ प्रश्नः-तुम्हारे श्रीकृष्ण कौन है ?

उत्तरः-हमारे प्राणप्रिय कांत है, और अहंकृति छोरके मेरे परम प्रिय है.

१४ प्रश्नः-उनको क्या तुम मनुष्य मानते हो ?

उत्तरः-नहीं. वे पूर्ण सगुण परमेश्वर हैं.

१५ प्रश्नः-पूर्णत्व कैसा होता है ?

उत्तरः-ईश्वरत्व और शिष्टत्व मिलके.

१६ प्रश्नः-ईश्वरत्व का क्या लक्षण है ?

उत्तरः-जिसके आश्रित षड्भग होवे है, सो ईश्वर है.

१७ प्रश्नः-षड्भग कौनसे है ?

उत्तरः-श्री, यश, औदार्य, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य

१८ **प्रश्न**:–अब एकएकका पृथक्पृथक् लक्षण कहो.

उत्तर:–मनोहर शोभाका नाम **श्री** है. **यश** है वह जो थोडे कर्ममें अत्यंत कीर्ति और श्रेय मिलना. इच्छानुसार देनेका नाम **औदार्य**[1] है. **ज्ञान** दो प्रकारका; व्यवस्थाकारी और बंधनिवर्तक. जगत्की उत्पत्ति–स्थितिलयके व्यवस्थाको जानना व्यवस्थाकारी ज्ञान है. और अज्ञानकी निवृत्ति जिससे होती है, तत् बंधनिवर्तक ज्ञान है. किसी कर्ममे वा फलमें आसक्ति नहीं रखना **वैराग्य** है. अप्रतिबद्धाऽखंडानंद और कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं शक्तीका नाम **ऐश्वर्य** है. यहही षड् भग है. इनका अधिष्ठान परमात्मा है ?

१९ **प्रश्न**:—तो ये गुण जीवमें नहीं पाये जाते है?

उत्तर:—नहीं.

२० **प्रश्न**—तो जीव परमेश्वरका अंश क्योंकर कहा ?

उत्तर:—ये षड्भग जीवमें अल्प तो पाये जाते है, वरन् जीवको तिनसे कुछ नफा नहीं है उलटा तोटाही है.

२१ **प्रश्न**:—क्या तोटा है ?

उत्तर:—इनसे जीवकी वासना अरु दुःख अधिक बढ्या है. जैसे की, उष्ण पदार्थके ऊपर अल्प जल डालनेसे गरमी अधिक भासती है, वा ज्वरमें अल्पशक्तिवाला औषध

---

१ यह दातृत्व ओदार्य है; और चतुर्विध औदार्यका निरूपण आगे किया जावेगा.

देनेसे ज्वरका अधिक प्रकोप होता है, तैसेही वे षड्भग अल्पताकी कारण जीवके वासनाको बढावते है.

२२ प्रश्नः–किस भगकी अल्पतासे जीवकी कैसी वासना बढती है ?

उत्तरः–श्रीकी अल्पता होनेसे सौंदर्यवासना बढती है. क्यौंकी, पूर्ण श्रीकी तृप्ति नहीं. इसतें गृहसौंदर्य, पुत्रसौंदर्य, स्त्रीसौंदर्य, पदार्थसौंदर्य, ऐसी वासना बढती है यशकी अल्पतासे साहस करनेकी वासना बढती है. औदार्यकी अल्पतासे फलयाचनवासना बढती है. ज्ञानके अल्पतासे संसारकी सत्यता और नास्तिकता बढती है. वैराग्यके अल्पतासे विषयासक्ति बढती है. और ऐश्वर्यकी अल्पतासे इच्छापघात और दुःख बढता है. 'अल्पता' शब्द यहां तिरोधानवाची है. ऐसे तिरोहित गुणका अधिष्ठान जीव है.

२३ प्रश्नः–तो यह जीव पूर्ण कब होवेंगा ?

उत्तरः–जैसा लवण समुद्रमें मिल जाता है, तैसा अपने पूर्णमें मिल जायगा तब.

२४ प्रश्नः–तो जीवने पूर्णमें कैसा मिलना ?

उत्तरः–ईश्वरकी भक्तिसे.

२५ प्रश्न–क्यौं, ज्ञानसे नहीं मिलेंगा ?

उत्तरः–हां. बंधनिवृत्ति तो ज्ञानसे होवेंगी. वरन् संपूर्ण गुण नही आवेंगे.

२६ प्रश्नः—भक्तीसे क्यौंकर आते है ?

उत्तरः—उन गुणोंकी पूर्णता करनेके भक्तीमेंही गुण है.

२७ प्रश्नः—भक्तीमें वे गुण कौनसे है ?

उत्तरः—ध्यान, कीर्तन, समर्पण, माहात्म्यज्ञान, विषयोपेक्षा और परमप्रीति.

२८ प्रश्नः—किस गुणसे किसकी पूर्णता होती है ?

उत्तरः—एष जीव जब परमेश्वरका ध्यान करता है, तदा अस्य श्रीकी पूर्णता होती है. कीर्तन करता है, तदा यशकी पूर्णता होती है. अपने सब कर्म समर्पण करता है, तदा औदार्यकी पूर्णता होती है. माहात्म्यज्ञाननिष्ठ होता है, तदा सर्वज्ञताकी पूर्णता होती है. ऊपर कह्या दोनों प्रकारका ज्ञान सर्वज्ञता है. विषयोपेक्षासे वैराग्यकी पूर्णता होती है. परमप्रेमतें ऐश्वर्यकी पूर्णता होती है. श्रवणादिक नवविध भक्ति इन गुणोंसे युक्त होती है. तां अग्रे कहेंगे.

२९ प्रश्नः—ऐसा पूर्ण जीव ईश्वरसे भिन्न रहता है वा अभिन्न रहता है ?

उत्तरः—सो ईश्वरसे अभिन्न होता है. इतनाही क्या कहना है ? वह साक्षात् ईश्वरही होता है.

३० प्रश्नः—तो एक एक जीव ईश्वर होनेसे ऐसे बहोत ईश्वर होवेंगे ?

उत्तरः–नहीं. लवणकण समुद्रमे डालनेसे समुद्र कुछ बढता घटता नहीं प्रतीत होता है. तैसे, एकही ईश्वरमें जीव मिलके ईश्वरताको प्राप्त होता हैं.

३१ प्रश्नः–जीव भिन्न क्यों है ?

उत्तरः–अनादि अविद्यासे.

३२ प्रश्नः–अनादि अविद्याका क्या स्वरूप है ?

उत्तरः–आवरण और विक्षेप.

३३ प्रश्नः–इसकी निवृति कैसी होती है ?

उत्तरः–माहात्म्यज्ञानतें आवरणकी निवृत्ति होती है. और ध्यानादि गुणोंतें विक्षेपकी निवृत्ति होती है.

३४ प्रश्नः–तो पूर्व कह्या जो उपासनासे निवृत होनेवाला विक्षेप यही है, वा कोई दुसरा है ?

उत्तरः–हे सखि, तेरे प्रश्नका अर्थ मैंने जाण्या. सो यह है की, जो पूर्व कहेला विक्षेप और अब कहेला विक्षेप एक होवे तो भक्ति अरु उपासनाकीभी एकता होवेंगी. परंतु ऐसा नही. उपासनासे निवृत्त होनेवाले विक्षेपका अर्थ मनकी अनैकाग्रता है. ताकी निवृत्ति आवरणनिवृत्तिके पूर्व और मलनिवृत्तिके अनंतर है. सो 'वेदांतडिंडिम' में कहा है.

श्लोकः–कर्माणि चितशुद्धयर्थमैकाग्र्यार्थमुपासना ।
मोक्षार्थं ब्रह्मविज्ञानमिति वेदांतडिंडिमः ॥१॥

इस श्लोकमें ज्ञानके पूर्व तथा आवरणनिवृत्तिके पूर्व एकाग्रताके अर्थ उपासना कही है. आवरणनिवृत्ति तो

ज्ञानसमकालीन होवे है. जातें, ज्ञानके अनंतर उपासनाकी आवश्यकता नही. अर्थात् उपासनासे जो विक्षेपनिवृत्ति होती है, सो मनकी चंचलताका नाम है.

३५ प्रश्नः तो भक्तीसे निवृत्त होनेवाला विक्षेप कौनसा है ? और ताका निरूपण क्व करेला है ?

उत्तरः-आवरणनिवृत्तिके अनंतर जो विक्षेप रहे है, सो भक्तीसे निवृत्त होनेवाला है. तिसका निरूपण 'पंचदशीमें' कीना है. तत् इस भांति है. रज्जुसर्पनिवृत्तिके अनंतर यथा भयकंपादिक रहते है, तथा अज्ञानपूर्वक आवरणनिवृत्तीके अनंतरभी संसारसुखदु:खप्रतीति रहे है. एतन्नामही विक्षेप है. और जलस्थवृक्षप्रतिबिंबदृष्टांततें 'वृत्तिप्रभाकर' मेंभी कथन कऱ्या है. अयं विक्षेप भक्तीतेंही निवृत्त होवे है. विस्तरशो देखनेकी अभिलाषा होवे, तो इन उभय विक्षेपका निरूपण 'वेदान्तपदार्थोद्देशदीपिका' में कऱ्या है, तहां जाणिलेना.

३६ प्रश्नः-यह आवरण अरु विक्षेप किसके आश्रित रहे है ?

उत्तरः-जीवके.

३७ प्रश्नः-तो जीव क्या है ?

उत्तरः-अविद्यामें प्रतिबिंबित आभास.

३८ प्रश्नः-तो ये षड्भग जीवके अविद्यासेही तिरोहित हुये है ?

उत्तर:–हां.

३९ प्रश्नः पूर्व कही हुई भक्तीसे एष जरूर ईश्वर होता है ?

उत्तरः होता है, ये क्या पूछते हो ? वह जीवत्-कालमें ईश्वरही है.

४० प्रश्न:–इसमें क्या प्रमाण है ?

उत्तर:–'ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवति।' 'ब्रह्मवित् ब्रह्मणि स्थितः।' 'मयि ते तेषु चाप्यहम्।' इत्यादि श्रुति प्रमाण है

४१ प्रश्न:–तो उसको देशकालकी अपेक्षा कुछ नही ?

उत्तर:–नहीं. यहां श्रीमत्सद्गुरुज्ञानेश्वरतातमुख-निर्गतानुभवामृतांतर्गत श्रुति प्रमाण है. सा श्रुति यह है:–

दोहा–भक्त भया भगवंतही हुवा ग्रामही पंथ ।
प्रियहरिलीलागानमें विश्वहि भया इकन्त ।।

४२ प्रश्न:–तो भक्ति निर्गुणविषय करनेबिना जीव व्यापक ब्रह्म नहीं बन सकेंगा ?

उत्तर:–ऐसा नहीं. तातनें कहा है:–

दोहा–सुधासिंधुमें रहत हैं अमरदानका गून ।
तथाहि बिंदुग्रहणतें नहिं कछु पावत न्यून ।।
तथा एकदेशीय अरु व्यापक सबहि समान ।
यही जाननेकारन करो संतजनमान ।।

एतत् गुरुवाक्य है. अणं, अपनी विशेष विचारतेंभी प्रतीत होवे है की, सगुणभक्तिबिना व्यापकमें प्रवेश नहीं.

यद्वत् सिंधुसैंधवमिलाफ एकदेशमेंही होता है, तद्वत् अल्पका व्यापक होना एकदेशीय सगुणभक्तीसेही होता है. और '**क्लेशोऽधिकतरस्तेषां**' इत्यादि श्लोकोमेंभी निर्गुणोपासकोंकी कष्टतरता कथन करी है.

४३ **प्रश्नः**–सा कष्टतरता कथंभूता है ?

उत्तरः–व्यतिरेक करनेसे विषयका रोध करना पडता है. तातें विषयका द्वेष उपजता है. सो द्वेष क्लेश है. ताकी निवृत्ति केवल व्यतिरेकतें होती नहीं. अरु व्यतिरेक-विना निर्गुणोपासना होती नहीं. अतो सा निर्गुणोपासना कष्टमयी है, ऐसा निरूपण कऱ्या. निर्गुणोपासनामें व्यति-रेककी अत्यंतावश्यकता श्रीमच्छंकराचार्यजीनें 'पंचीकरण'में बोली है. अणे, 'मांडुक्यकारिका'में तो व्यतिरेकका और निर्गुणोपासनाका एकही लक्षण है.

४४ **प्रश्नः**–तो 'मेरे अव्यक्तरूपको नहीं जानिके मूढ लोक मुझे व्यक्त मानते है' ऐसा गीताजीके सप्तम तथा नवम अध्यायमें भगवानने क्यौंकर कहा है ?

उत्तरः–अच्छा पूछा. निर्गुणके विषे मन लगानेका जो निषेध कऱ्या है, सो ध्यानके द्वारा मन लगानेका निषेध है. और ज्ञान तो निर्गुणकाही अपेक्षित है. जैसे सुवर्णको नहीं जानिके केवल भूषणाकारकोही मोहित होनेवाला पीतलके अलंकाराकारको मानिकेभी फस जावेंगा, तैसे निर्गुणको नहीं जानीके केवल आकारपर दृष्टि देनेवाला

फसाने लिये हुये सिद्धियोंके आकारविशेषोंको देखिकरी भूल जावेंगा. जातें व्यक्तमूल अव्यक्त सुवर्णकी नाई मेरे इस आकारस्थान निर्गुणरूपकोभी जानना आवश्यक है. इस अभिप्रायमें सप्तम-नवमअध्यायगत भगवद्वचनका तात्पर्य है.

अरु 'श्रीमद्भागवत'के दशम स्कंधके चौदाहवे अध्यायके चौथे श्लोकमें ब्रह्मदेवने कहा है की, "हे भगवन्! अनंत कल्याणसुधाप्रवाह है जिस तुम्हारे पुण्यरूप भक्तीका, अमुम् छोरके जे कोई ज्ञानप्राप्तीके लिये कष्ट करते है, तिनको ते कष्टही प्राप्त होते है. काहे तें ? जो कोई भूसा कूटता है, तं तत् कूटनाही फल मिलता है"

४५ **प्रश्न**:-निर्गुणीपासकोंकी योगादिकोंतें द्वेषक्लेश-निवृत्ति नहीं होती है ?

उत्तर:-हां, नहीं होती है. इस विषे दशम स्कंधमें भगवानका मुचकुंदसे बचन है, सो प्रमाण है.

"युंजानानामभक्तानां प्राणायामादिभिर्मनः ।
अक्षीणवासनं राजन्दृश्यते पुनरुत्थितम्।।" (श्रीमद्भागवत)

"हे राजन् मुचकुंद ! जे प्राणायामादि अष्टांग योगसे, वा नाना विचारसे मेरे निर्गुणरूपमें मन लगाते है, और मम सगुणभक्ति नहीं जानते है, तिनका चित्त विषयद्वेषक्लेशादियुक्त होनेसे वासनाक्षय नहीं होता है; अतः पुनरुत्थान होता है. तदुत्थानको मैही देखता हूं. ते मूढ विमुक्तमानी पुरुष अपने उत्थानको नहीं देखते हैं."

भगवानने कहा है, जातें 'दृश्यते' इस शब्दके पूर्व 'मया' पदका अध्याहार करनेतें ऐसा स्पष्ट अर्थ होता है.

४६ **प्रश्न**:-तो सगुणभक्त निर्गुणभक्तीकी कभी अपेक्षा करते है ?

उत्तर:-नहीं. ब्रह्मदेवने कहा है, कि "हे भगवन् ! तुम्हारे भक्त ज्ञान मिलाने आदि कष्ट छोर संतोंके मुखसे आपकी कथा श्रवण करते है; आप तीन लोकोंको अजित हो, तोभी तिनोंनें आपको जित लिया है."

४७ **प्रश्न**:-सगुण परमात्मा आत्माकोभी ज्ञान देनेको और पूर्ण करनेको समर्थ है ?

उत्तर:-हां. अस्मिन् श्रुतिभी प्रमाण है.

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये ॥

(श्वेताश्वतर)

श्रुत्यर्थः-"जो देव पूर्व ब्रह्माको उत्पन्न करके तिसको वेदप्रदान करता भया तिस रक्षण करनेवाले, और आत्मा तथा बद्धीको प्रकाश देनेवाले परमेश्वरको मै मुमुक्षु नमस्कार करता हूं." इस श्रुतीमें वेदप्रदान करनेवाला पुरुष साकारही होना चाहिये.

४८ **प्रश्न**-तो सगुण व्यापक हो सकता है ?

उत्तर:-हां. "**सहस्रशीर्षा**" इत्यादि श्रुति सगुणकी व्यापकतामें प्रमाण है.

४९ **प्रश्नः**–तो"**केवलो निर्गुणश्च**" इस श्रुतीका अर्थ तुम क्या करते हो ?

उत्तर:–"अविद्याके जो सत्वादिक गुण ते जामें नहीं, अतो निर्गुण; और बंध नहीं जाते केवल." अयं ता श्रुतीका अर्थ है. नहीं तो पूर्व श्रुतीसे विरोध होवेगा.

५० **प्रश्न** :–तो तुम 'निर्गुण' का अर्थ 'निराकार' नहीं करते हो ?

उत्तर:–मै नहीं करती हूं. और करतीभी हूं.

५१ **प्रश्न**:–तर्हि '**द्वावेतौ ब्रह्मणो रूपे मूर्तं चामूर्तं च**' ब्रह्मके मूर्त अरु अमूर्त ये दो रूप है, इस वाक्यकी तुम्हारे मतमें कथंभूता व्यवस्था होवेगी ?

उत्तर:–मेरा कुछ पृथक् मत नहीं है. तिस वाक्यकी व्यवस्था समीचीन है. जैसी सूर्यकी विरलावस्था प्रकाश निराकार है, और प्रकाशकी घनावस्था सूर्य साकार प्रतीत होता है, तैसीही परमात्माकी व्यापक विरलावस्था निराकार प्रतीत होती है. अरु घनावस्था साकार प्रतीत होती है. इयं घनावस्थाही अनध्यस्त विवर्त है. श्रुतीमें जो द्वित्त्व कहा है, सो बालबुद्धीको जणावनेके अर्थ कहा है.

५२ **प्रश्न**:–तो परमात्मा सावयव होवेगा ?

उत्तर:–नहीं. पृथक्ताज्ञानविना अवयवकी सिद्धता नहीं होती है. तैसे परमात्मामें पृथक्ज्ञान नहीं. अतो

सावयवता नहीं सिद्ध होती है. अरु कोई कवीने बोल्या है:-

दोहा:- निर्गुण अरु सगुण यह दोनो जाके अंग ।
नंदलाल सोही प्रभु खेलत हमरे संग ।।

५३ **प्रश्नः**-तो सगुण देवमें जे करचरण प्रतीत होते है ते पृथक् नहीं ?

उत्तर:-नहीं. जैसे पंचभूतदृष्टीसे अस्मदादिशरीरोंके करचरण पृथक् नहीं, तैसे चैतन्यदृष्टीसे सगुण परमेश्वरकेभी करचरण पृथक् नहीं. और, '**विश्वतोबाहु: विश्वतोमुखं विश्वतश्चक्षु: विश्वत:पाद:**' एषा श्रुति तहां प्रमाण है.

५४ **प्रश्न**:-तो "**अपाणिपादो जवनो गृहीत:**" इत्यादि श्रुतियोंसे विरोध होवेगा.

उत्तर:-ये श्रुतियां भौतिक अरु लौकिक पाणिपादका निषेध करती है. जातें विरोध नहीं. और विरलावस्थारूप ब्रह्मपर होनेतेभी विरोध नहीं. और '**सर्वत: पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् । सर्वत: श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।।**' (मुंडकोपनिषत्) एषा दुसरीभी श्रुति तहां प्रमाण है.

५५ **प्रश्न**:-ऐसे जिधर उधर हात पाव वालेको ईश्वर माने, तो किंचित् कृमिविशेषोंकोभी ईश्वर मानना पडेगा !

उत्तर:-कृमियोंको लौकिक पाणिपाद है. और ईश्वरमें तिनका निषेध होनेतें, कोटिप्रवेश होता नहीं.

५६ **प्रश्न**:–तर्हि '**यस्य पृथ्वी शरीरं एष ते आत्माऽन्तर्यामी्यमृत:**' इत्यादि श्रुतियोंकी क्या व्यवस्था है ?

उत्तर:–एता श्रुतियां पदार्थमात्रको परमेश्वरका शरीर कहतिया है; और व्यापकतातें 'अन्तर्यामी' कहतिया है और 'अमृत' कहनेसे नित्यता सिद्ध होती है.

५७ **प्रश्न**:–सगुण नित्य कैसा होवेगा ?

उत्तर:–हां, नित्य है. '**सहस्रशीर्षा**' एषा श्रुति तिस सगुणको व्यापक कहती है. और '**आत्माऽमृत:**' एषा श्रुति नित्य कहती है. जो जो व्याप्त होता है, सो सो नित्य होता है. क्योंकि अपनेतें भिन्न कोइ देशमे नाश प्रतीत होना चाहिये. अपना अपनेमें नाश होना असंभव है. अपने नाशका आपही अधिकरण कैसा होवेगा ? और '**न व्यापित्वाद्देशतोऽन्तो**' एषा श्रुति व्यापककी देशपरिच्छेदका निषेध करती है. जातें, '**यद्यव्द्यापकं तन्नित्यं**' यह सिद्ध भया.

५८ प्रश्न:–तो 'मांडुक्योपनिषद' में अंतर्यामीको मायाका स्वामी कह्या है ।

उत्तर:–कह्या तो वहां कुछ प्रत्यवाय नहीं. क्यौंकि, स्वामी 'ईशिता' का नाम है. और 'ईशिता' मायामें कैसा रहेगा ? '**विद्याऽविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्य:**' एषा श्रुतिभी तहां प्रमाण है. भिन्नत्व जो कहा है, सो मृगजल और सूर्यकी नाई प्रातिभासिक है; अन्योन्याभावरूप वा वस्तुपरिच्छेदरूप व्यावहारिक नहीं. और जीव प्रातिभासिक

है. यातें सो वस्तुत: ईश्वरही है किंतु अविद्याबलतें अपनेको भिन्न मानता है.

५९ प्रश्न:–बहोत पूर्वाचार्योनें तो जीवको व्यावहारिक कह्या है, और तुम प्रातिभासिक कहते हो ? जातें, आचार्य-वाणीरूप विरोध प्राप्त होवेगा ?

उत्तर:–यद्यपि पूर्वाचार्योंने जीवको व्यावहारिकता कही है, सा तूलाविद्याकार्य मृगजलस्वप्नादि प्रातिभासिकके अपेक्षा कही है, ब्रह्मकी अपेक्षा नहीं. काहे तें, इस संसारमें यथा मृगजलस्वप्नादिक तूलाविद्यारूप भ्रमका कार्य होनेतें प्रातिभासिक है, तथा जीवजगत्भी मूलाविद्यारूप भ्रमका कार्य होनेतें परब्रह्ममें प्रातिभासिक है. तत्र इत्थं व्यवस्था जानणी. जगत् तो रज्जुसर्पादिकोंकीनाई आभासवाची प्रातिभासिक है. अरु जीव जलस्थसूर्यप्रतिबिंबादिकोंकि नाई प्रतिबिंबरूप प्रातिभासिक है. अयं प्रतिभास अविद्यातेंही होवे है. अरु जीवकी परब्रह्मता नष्ट न होके, सो अविद्याम प्रतिबिंबित है. जातें वो प्रातिभासिकभी कहावे है.

६० प्रश्न:–परब्रह्मरूपमें अविद्या कैसी स्थापित भयी ?

उत्तर:–अविद्याकी सिद्धि अनुमानसे वा युक्तीसे नहीं होती; तो अनुभवरूप प्रत्यक्ष प्रमाणसे होती है. **'अहं परमानंदरूपमीश्वरं न जानामि'। 'अहं सुखी'। 'अहं दु:खी'। 'अहं मोहापन्न:'।** ऐसा अनुभव सब जीवोंको अनादि कालतें चला आवता है. तहां सब अविद्याका

तो मनुष्योंको अनुभव है. और 'अहं **परमानंदरूपमीश्वरं न जानामि** ' यह अंश छोरिके '**अहं सुखी**'। '**अहं दुःखी**' ऐसे दो अंशोंको ज्ञान तो पशुपक्षियोंकोभी है. और '**अहं मोहापन्नः**' इस एक अंशका ज्ञान वृक्षपाषाणोंको है. यह गोचरतारीति जणाई है. प्रधानगौणतासे तो अविद्याके चारही अंशोंका ज्ञान सब जीवोंको है.

६१ प्रश्नः—मनुष्य छोरके वृक्षादिकोंको न्यून अविद्याका जो अनुभव है, तौ तिनके अविद्याकी निवृत्ति शीघ्रही हो जावेगी ?

उत्तरः—नहीं. मनुष्य छोरके वृक्षादिक जीवोंको न्यून सत्व होनेतें अरु तम आदिकोंकी प्रधानता होनेंते अविद्याके न्यून अंशोंका अनुभव है. सत्वके बलतें न्यून अंशोंका अनुभव नहीं. जातें, तिनके अविद्याकी शीघ्र निवृत्ति बने नहीं. यथा, किसी पुरुषको वातादिदोषबलतें विषयोंकी प्रतीति होवे नहीं, तथापि तिस पुरुषकी विषयनिवृत्ति लोकमें मानी नहीं, तथा तमःप्रधानताके बलतें नरवर्जित तर्वादिक जीवोंको अविद्याका न्यून अंशानुभव है. जातें तिन जीवोंको शीघ्र अविद्यानिवृत्तीका अधिकार नहीं.

६२ प्रश्नः-तो सत्वके बलतें न्यून अविद्याके अंशका अनुभव कोई जीवोंको है ?

उत्तरः—हां, मनुष्यके ऊर्ध्व जे देवादिक तिनोंको ऐसाही अनुभव है. यथा, किसी पुरुषकी ध्यानादिकतें

विषयनिवृत्ति लोकमें सत्य मानी जाती है, तथा देवादि जीवोंको अविद्याका न्यून अंशानुभव सत्वके बलतें मान्या जाता है. एषा विद्यारण्यादिकोंकी रीति है. अरु प्रधानगौणतासे अविद्याके सर्वांशका सर्व जीवोंको अनुभव है. इयं भगवद्-गीताकी रीति है. अरु योगवासिष्ठकी रीतीसे तो चिदा-काशके किसी एक देशमें अनादि अविद्या फुरती है. सा कौनसे समय कैसीभी फुर जावेगी. जाका नियम नहीं. मात्र तटस्थलक्षणसे तिस अविद्याकार्यकी उत्पत्ति, स्थिति, लय होना, एषा ईश्वरकीही नीति है. इति. ऐसे अविद्याका अनुभव सर्वजीवप्रत्यक्ष है. इदं 'शारीरक शांकरभाष्य' के आरंभमें कह्या. यामें कोईभी ग्रंथकारका वाद नहीं. सो विचारी पुरुषनें जाणिलेना. अयं अनुभव अनादि है. क्यौंकि जो कोई इसका आरंभ जानना चाहता है, तिसको ऐसा पूछना, "तूं साक्षीरूप व्हयके अविद्याका आरंभ जानेगा, तो संभवता नहीं. काहे तें, भ्रांतिरहितको भ्रमका आरंभ जानना असंभव है. और अविद्यामें आयके अविद्याका आरंभ जानना चाहे, तोभी बने नहीं. क्यौंकि, भ्रांतिष्ट पुरुषोंसे भ्रमका आरंभ जानना अशक्य है. क्यौंकि, 'भ्रमको जानेमात्रहीसे भ्रम दूर होता है,' इस न्यायतें, अविद्याका आरंभ जानना अशक्य है." अविद्यामें प्रातिभासिक चेतनही जीव है. **'आभास एव च'** एतत् व्याससूत्र तहां प्रमाण है.

६३ **प्रश्न**:–अविद्याका ज्ञानही नहीं होता, तो सा अनुभवसे सिद्ध है, यह कहनेका क्या तात्पर्य है ?

उत्तर:–यहही तात्पर्य है की, अविद्या अपना अनुभव नही करातो, किंतु अधिष्ठानके लोपका अनुभव करावती है. और दुसरे विपरीत पदार्थोंका अनुभव करावती है. इदमेव उसका लक्षण है. यथा, भ्रांतितूलाविद्या रज्जूके लोपका और विपरीत सर्पका अनुभव करावती है, तथा मूलाविद्या भी **'परमानंदरूपमीश्वरं न जानामि'** इस ब्रह्मके लोपका और दृश्यरूप विपरीत संसारका अनुभव करावती है. स्वयं अपना अनुभव नहीं करावती. क्यौंकि, अधिष्ठानके लोपसे वा कार्यसेही भ्रमका अनुभव होना सिद्ध है. वस्तुतः भ्रमका अनुभव होवेगा तो भ्रमही निवृत्त होवेगा. जातें ज्ञान नहीं हुवा, और आरंभ नहीं समझा, तोभी अनुभवसे अनादि-अविद्यासिद्धि सिद्ध भयी.

६४ **प्रश्न**:–स्वरूपसे जो अविद्याका ज्ञान नहीं होता है, तो उसकी निवृत्ति कैसी होवेगी ?

उत्तर:–अधिष्ठानज्ञानसे उसकी निवृत्ति होती है

६५ **प्रश्न**:–तो ज्ञानमात्रहीसे निवृत्ति होती है. भक्तीकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर:–ज्ञानमात्रसे 'आवरण' की निवृत्ति तो होवेगी. किंतु 'विक्षेप' की निवृत्ति नहीं होवेगी. जैसे, रज्जुसर्पनिवृत्य-नंतर भयकंपादि रहते है, सो 'विक्षेप' है.

६६ **प्रश्न**:–रज्जुसर्पके भयकंपादि थोडे काल रहते है.

उत्तर:–रज्जुसर्पभ्रम तूलाविद्या होनेसे थोडा काल रहता है. मूलविद्या अनादि होनेसे उसका विक्षेप कितना रहता है, यह कोई जाणे नहीं. इसलिये भक्तिही करना आवश्यक है.

६७ **प्रश्न**–विक्षेप नहीं निवृत्त हुवा, तो क्या हानि है ?

उत्तर:–वाहवा ! हानि तो विक्षपहीसे है. आवरणसे क्या है? रज्जूके अज्ञानसे कुछ हानि नहीं. परंतु रज्जुसर्प-भयादिकोंसे मृत्युसमान दुःखवृद्धि देखी है.

६८ **प्रश्न**:–तो फिर विक्षेपनिवृत्तीकाही प्रयत्न करना. आवरणनिवृत्तीकी क्या जरूर है ?

उत्तर:–श्रवण करो. आवरणनिवृत्ति हुयेपर विक्षेप-निवृत्ति कभीतोभी निश्चयकरके होवेगी. किंतु, आवरण-निवृत्ति जो नही कीनी, तो विक्षेपनिवृत्ति देवकी पितासेभी कभी नहीं होवेगी. यथा, रज्जसर्प निवृत्त हुवा, तो भय-कंपादिक कभीतोभी निश्चयकरके निवृत्त होवेंगे. अरु नहीं निवृत्त हुवा, तो किसीभी यत्नसे भयकंपादिकनिवृत्तीका संभव नहीं.

६९ **प्रश्न**:–रज्जुसर्पके समीपसे दुसरी जगा पलायन करनेसे भयकंपादि निवृत्तभी हो जावेंगे, फिर सर्प रहे ना ?

उत्तर:–रज्जुसर्प अल्प देशमें व्यापक होनसे दुसरी जगा पलायन करोंगे. परंतु मूलाविद्या तो अनंतब्रह्मांडव्यापक

है. तिसको छोर दुसरी जगा पलायन करनेका संभवही नहीं. हां, भक्तीसे ईश्वररूप देशमें जो पलायन करोंगे, तो हमे इष्टापत्ति है.

७० **प्रश्न**:-तुलाविद्या अल्पदेशाव्यापक है, और मूलाविद्या अनंतब्रह्मांडव्यापक है, ये क्यौंकर गृहीत करना ?

उत्तर:-गृहीत नहीं. अविद्याकी अनुभवसे सिद्धी होती है. जातें, इसमें अनुभवही प्रमाण है. सो इत्थं है. रज्जुसर्प कोई एक पुरुषको कोई एक भूमीके कोनोंमें कस्मिश्चित् समयमें दिखेंगा परंतु '**अहं परमानंदरूपमीश्वरं न जानामि**' इत्यादि पूर्वकथितचतुष्टयरूपा अविद्याका तो सब ब्रह्मांडस्थ जीवोंको अनुभव है. जातें, मूलाविद्या ब्रह्मांडव्यापक है. तथापि ईश्वरकी अपेक्षा व्याप्य है. जैसा, मृगजल कितनाभी व्यापक हुवा, तो सूर्यकी अपेक्षा व्याप्य है. जितनी अविद्या व्यापक है, तितनाही जीव व्यापक है. सृष्टि यह जीवाभास है. जैसे, एकही पुरुष स्वप्नमें अनेक पुरुषरूप होता है, और निद्राके बलतें परस्परोंको पृथक् देखता है, तैसे जीवभी अविद्याके बलतें ताको वश व्हयके अपनेको पृथक् पृथक् देखता है. '**तस्मिश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः**'। '**अविद्यावशगस्त्वन्यः**'। '**तद्वैचित्र्यादनेकधा**'। इत्यादि श्रुतिस्मृति प्रमाण है. एवं, ईश्वराभास जीव, और जीवाभास सृष्टि, यह 'दृष्टिसृष्टिवादियोंका' सिद्धान्त है. कोई 'अनेक जीववाद' भी मानते है.

७१ प्रश्न:–'अनेकजीववादि'योमें तो भक्ति संभवेगी, किंतु 'एकजीववादि'योमें भक्तीका कैसा संभव है ?

उत्तर:–यथा, स्वप्नमें कोई पुरुष मर गया तो स्वप्नमें प्रेत तो गिरता है, लेकिन् ओ एक मरनेसे सब स्वप्नका नाश नहीं होता है. तैसे, एक जीवाभास मुक्त होनेसेभी सब जीवोंका मुक्तिसंभव नहीं होता है. और स्वप्न एक पुरुषका है, तौभी अपने अपने खानेका उपाय सब पुरुष करते है, तैसे यद्यपि जीव एक है, तथापि अपनी भिन्नता अपनको अनुभवसे प्रतीत होती है. तो भक्त्युपाय करनेमें क्या प्रतिबंध है ? जीवकी एकता और अनेकता कुछ सत्यतानिश्चयके वास्ते कही नहीं. केवळ निवृत्तिके वास्तेही कही है. यथा, कोई पृथक् घट रखके उसमें प्रतिबिंब मानते है, और कोई समुद्रमें एक बडा प्रतिबिंब मानके, उसमेसें घट भरलेनेपर घटमें भिन्नभिन्न प्रतिबिंब मानते है. परंतु किसीनेभी घट फोडा, तो प्रतिबिंब बिंबमेंही एकदम जा मिलता है. तिसको समुद्रमें जाय पश्चात् बिंबमें मिलनेका काम नहीं पडता. तथा अनेक जीव माने वा एक जीव माने, तोभी एकजीववालेंको प्रथम अपने मूलाविद्यामें मिलिकें, पश्चात् ब्रह्ममें मिलनेकी अवश्यकता नहीं. किन्तु एकदमसेही अपने आभासोपाधि अविद्याकी निवृत्ति होनेपर ब्रह्ममें मिलता है. अनेकजीववादियोंको तो यहां शंकाही नहीं.

७२ **प्रश्नः**–आवरणनिवृत्ति करके विक्षेपनिवृत्ति होनेतक भक्तिरहित रहनेको कौनसा प्रत्यवाय है ?

उत्तरः–विक्षेपसे दुःख होता है. जातें, विक्षेपनिवृत्यर्थ भक्तीकी अत्यंतावश्यकता है.

७३ **प्रश्नः**–तितिक्षु पुरुषको जैसा दुःख सहन करना है, तैसे आवरणनिवृत्यनंतर दुःख सहन करके भक्तिरहित रहनेको क्या हरकत है ?

उत्तरः–तितिक्षु पुरुष दुःख सहन करता है. तिसकी दुःखनिवृत्ति नहीं होती है. तथा, आवरण निवृत्यनंतरभी दुःख सहन करना, और यहभी कितने कालतक ऐसा निश्चय नहीं. दुःख निवृत्त होगा, यह तो निश्चय है. लेकिन्, कालनिश्चय नही. ऐसा जो आवरणनिवृत्यनंतर है, तो फिर आवरणसहित अनंतजन्म दुःख भोगनेमें क्या प्रत्यवाय है ?

७४ **प्रश्नः**–कुछ नहीं.

उत्तरः–तो तू बद्ध है. हमारा मुमुक्षुओंको कहना है, बद्धको नहीं.

७५ **प्रश्नः**–हे सखि ! मै आपको कुंठित करनेके लिये प्रश्न नहीं करती हूं. आपने 'तू बद्ध है, हमारा बद्धको कहना नहीं' यह वचन मेरे अनिष्टापत्तीके अर्थ कह्या. तन्माम् शिरसा मान्य है. किन्तु तिस बचनतें मेरी शंकानि-वृत्ति भयी नहीं.

उत्तर:–हे सखि ! तू मुमुक्षु है वा नहीं यह देखनेके लिये मैंने अनिष्टापत्ति कीनी थी. तथापि तेरी तीव्र मुमुक्षा प्रबल देखिकें, अब मच्चेतसि कांतकृपाविर्भूति हुई जातें, जथा तव वांछा होवे, तथाविध प्रश्न करनेको मेरी ओरते प्रत्यवाय है नहीं.

७६ प्रश्नः–हे सखि ! आवरणनिवृत्त्यनंतर कभीतोभी विक्षेपनिवृत्ति होवेगी, अयं यदि त्रिवार निश्चय होवे, तो वर्तमानदेहपातानंतर निश्चय करके मुक्ति प्राप्त होवेगी. अयं ही मेरा प्रश्न है.

उत्तरः– वर्तमानदेहपातानंतर विक्षेपकी अवश्य निवृत्ति होवेगी, यह नियम नहीं. काहे तें, 'अनुभवाद्वैतवादि' योंके मतमें विक्षेपका प्रतिबंधक प्रारब्ध है. जब, तिस प्रतिबंधरूप प्रारब्धकी निवृत्ति व्हय जावेगी, तब जिस चेतनतें पूर्व आवरणनिवृत्ति हुई, उसी चेतनतें विक्षेपकी निवृत्ति व्हय जावेगी, अन्यथा नहीं. फलोन्मुख कर्मका नाम 'प्रारब्ध' है. सो एकजन्ममात्रका होवे नहीं, किंतु अनेकजन्म-मात्रका होवे है. श्रीमद्भगवद्गीताके चतुर्थाध्यायके '**ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा**' इस वाक्यपर श्रीमन्मधुसूदनाचार्य स्वामीजीने टीका करी, तामें यह कह्या है की, आधिकारिक जे पुरुष है, तिनका प्रारब्धसंज्ञक अधिकार ज्ञानके अनंतरभी अनेक जन्म रहे है. '**यावदधि-कारमवस्थितिराधिकारिकाणाम्**' एतत् व्याससूत्र तहां प्रमाण

है. सो अधिकारसंज्ञक प्रारब्ध अनेक जन्म उपासकोंकाही रहे है; अन्योंका नहीं. यथा, प्रत्येक कल्पके आरंभमें ब्रह्मज्ञान व्हयकेभी जैसे सनत्कुमारादिक पुनः पुनः उपजते है, अरु भगवान वसिष्ठकेभी ज्ञानानंतर जन्मत्रय पुराणादिकनमें कहै है, ऐसा यद्यपि सिद्धांत है, तथापि तहां एषा व्यवस्था है.–' अनेक जन्म प्रारब्ध उपासकोंकाही रहे है ' ऐसा बचन कहा है. 'ईश्वरोपासकोंका रहे है' ऐसा बचन नहीं. जातें यह अनुमान होवे. उपासक शब्द सामान्य होनेतें ईश्वरोपासकोंका तो अनेक कल्प अनेक जन्म सुखरूप प्रारब्ध शेष रहे है. अरु, विषयोपासकोंका प्रारब्ध तो अनेक जन्म दुःखरूपही रहे है. अरु प्रारब्ध प्रतिबद्धकके निवृत्तिबिना विक्षेपकी निवृत्ति बने नहीं. अतो हे प्यारी ! आवरण-निवृत्तिपश्चात् वर्तमान देहपातानंतर नियता मुक्ति संभवे नहीं. यह 'अनुभवाऽद्वैतवादि'योंका मत है.

७७ प्रश्नः–यदि ईश्वरोपासकोंका सुखरूप प्रारब्ध शेष रहे है, और प्रारब्धप्रतिबंधके निवृत्तिबिना विक्षेपनिवृत्ति नहीं, यह सिद्धांत है, तो भगवद्भक्तोंने विक्षेपरूप अविद्याके निवृत्तीकी आशाही नहीं करना. क्यौंकि जितनी जितनी भक्ति बढावेंगे, उतना उतना सुखरूप प्रारब्ध बढता जावेगा. अरु प्रारब्ध तो सुखरूप वा दुःखरूप किसी रीतीका हो, तोभी विक्षेपनिवृत्तीका प्रतिबंधक है, यह पूर्व कह्या. जातें, भगवद्भक्तोंकी अविद्यानिवृत्ति सर्वथा नहीं बनेंगी.

ऐसा जो सुखरूप प्रारब्ध बढावणा, तो कुछ जन्मतक दु:खरूप प्रारब्धकाही भोगिकैं नाश करना इसमें क्या प्रत्यवाय है ?

उत्तर:–ज्ञानानंतर भक्तीतें सुखरूप प्रारब्ध बढे नहीं. किंतु ईश्वरकृपातें नाश व्है जावे है. सो भागवतमें भगवानने गोपीको कह्या है:–

न मय्यावेशितधियां कामः कामाय कल्पते ।
भर्जिताः क्वथिता धानाः प्रायो बीजाय नेष्यते ।।

—श्रीमद्भागवत

अनेक जन्मपर्यंत जो ईश्वरोपासकोंका सुखरूप प्रारब्ध कह्या, सो ज्ञानपूर्वांगोपासनाकृतज्ञानानंतर पूर्वांगोपासनानुसृतध्यानवृत्तिध्येयपरिनिष्ठित जनोंका जाणिलेना तदपि ज्ञानोत्तरभक्तिनिष्ठोंका ईश्वरकी कृपातें नष्ट व्हय जावे है. तथाविध दु:खरूप प्रारब्धभी अनेक जन्म होवे है. अरु तहां किसीकी कृपा नहीं होनेतें, दु:खभोगतेबिना निवृत्त होवे नहीं.

७८ प्रश्नः– मधुसूदनाचार्यजीने 'अद्वैतसिद्धि' ग्रंथमें अविद्यामें 'अर्थापत्ति' कही है, सा आवरणमेंही बने है. अरु ज्ञानतें आवरणनिवृति व्हय जावे है. जातें आवरणनिवृत्त्यनंतर विक्षेपरूप अविद्याका अंश शेष रहता है. एषा कल्पना समीचीन नहीं.

उत्तरः–' अद्वैतसिद्धी ' में जो अविद्याके विषय 'अर्थापत्ति' प्रमाण कह्या, तत् स्वयं अविद्यामें कह्या है. यथा, **'अहं परमानंदरूपं न जानामि '। 'दुःखरूपं वैचित्र्यं जगदिदं पश्यामि '।** ऐसा अनुभव सब जीवोंको है. सो अनुभव ब्रह्मसे होवे, तो ब्रह्मका ब्रह्मकोही बंधन बनेंगा. अरु ब्रह्मतें भिन्न कोई पदार्थोंसे होवे, तो द्वैत नित्य रहेंगा. जातें, ब्रह्माश्रया अनाद्यनंता, ऐसे अविद्याकी कल्पना विक्षेप आवृत्तिरूप अनभवके अर्थसे वेदांतियोंने करी है. **'अर्थेनापद्यते इति अर्थापत्तिः '** । तत् केवल आवरणमें बने नहीं.

७९ **प्रश्न**:–तो ज्ञानानंतर अविद्याकाही लेश रहता है, ऐसा अभ्युपगम हुवा ?

उत्तर:–हां. कोई एक वेदांती ऐसाभी कहे है. जैसे लसुणके भांडमेंसे लसुण निकाल लेनेपरभी बिना धोये लसुणका गंध तिस भांडको बहुत कालतक रहे है. तथा, आवरणनिवृत्यनंतरभी भक्तिबिना प्रारब्धके प्रतिबंधतें विक्षेपरूप अविद्याका अंश बहुत कालतक रहे है. तिस अंशकोही अप्पयादीक्षिताचार्यजीने 'सिद्धान्तलेशसंग्रह' ग्रंथमें 'अविद्या-लेश' नामकरी कह्या है.

८० **प्रश्नः**–सर्वज्ञात्ममुनि तो आवरणनिवृत्तिके अनंतर अविद्याका लेश नहीं माने है ?

उत्तर:–तिनका यह अभिप्राय है की, तत्वज्ञान, वासनाक्षय, अरु मनोनाश इन तीनोंको जीवन्मुक्तीके हेतु

विद्यारण्यादिक मानते है. तहां इयं व्यवस्था है. तत्वज्ञानसे अविद्यानिवृत्ति होनेतें, अर्थात् वासनाक्षय व्हयही जावे है. तथापि विरक्त्युपरतीसे मनोनाश किये बिना वासनाक्षयका रक्षण होवे नहीं. यह 'जीवन्मुक्तिविवेक' ग्रंथमे कह्या है. अरु पचदशीके 'चित्रदीप' प्रकरणमें तो विरक्त्युपरतिरहित ज्ञान जिसको है, तिसको विदेहमुक्ति निश्चयकरके है, किंतु जीवन्मुक्ति नही. अरु ज्ञानरहित विरक्त्युपरति जिसको है, तिसको तपोबलतें पुण्यलोकको प्राप्ति होवे है. जीवन्मुक्ति वा विदेहमुक्ति निश्चयकरके होवे नहीं. तत्वज्ञानतें देहपातानंतर दुःखनिवृत्तीका नाम 'विदेहमुक्ति' है. अरु जीवत्कालमेंही तत्वज्ञानतें दुःखनिवृत्तीका नाम 'जीवन्मुक्ति' है. सा जीवन्मुक्ति, विरक्त्युपरति अरु तत्वज्ञान, ये तीनोंभी जिन पुरुषोंमें रहते है, तिनको होवे है. अतो, तत्वज्ञानके पूर्व जो साधनचतुष्टयसंपन्न हुवा, अरु तिस साधनचतुष्टयके बलतेंही विरक्त्युपरति जो उत्पन्न व्हय गयी, तो तत्वज्ञानके अनंतरभी तिसका रक्षण करना. अरु साधनचतुष्टयसंपन्न नहीं होनेपरभी गुरूकी कृपारूप वाक्यतें कदाचित् यह जगत् सब संकेतरूप है, ऐसा तत्वज्ञान किसीको व्हय गया, तो ज्ञानके पश्चात् मनोनाश तथा दृष्टदुःखनिवृत्तिरूपजीवन्मुक्तिप्राप्तीके अर्थ विरक्ति अरु उपरतीका अभ्यास करना. सा विरक्ति अरु उपरति भगवद्भक्तीतेंही शीघ्र उत्पन्न होवे है. और साधनोंतें नहीं.

८१ **प्रश्न**:–विरक्ति विषयदोष दृष्टीतें, अरु उपरति योगाभ्यासतें उत्पन्न होती है, ऐसा विद्यारण्य कहते है. तो भगवद्भक्तीकी क्या आवश्यकता है ?

उत्तर–'ईश्वरप्रणिधानाद्वा' इत्यादि सूत्रोंसे पतंजल्याचार्यजीने योगका भक्तीमें तात्पर्य कह्या है. अरु **'योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनांतरात्मना । श्रद्धावान्भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥'** (भगवद्गीता.) इत्यादि श्रुतियांभी तहा प्रमाण हैतिया है. अरु भक्तिबिना विषयके ऊपर दोषदृष्टि करे तो तिन विषयोंका द्वेष उपजे है. सो द्वेष क्लेश होनेतें अधिक दुःखप्राप्तिही होवे है. अतो विरक्तीकाभी विषयार्पणरूप भगवद्भक्तीमें तात्पर्य युक्तिसिद्ध है. एवं विरक्त्युपरतीका भक्तीमें तात्पर्य होनेतें, ज्ञानानंतर भक्ति करनेतें शीघ्रही दृष्टदुःखकी निवृत्ति व्हय जावे है. यह अनुभवसे सिद्ध है. इस विषयमें अब शंका करना योग्य नही.

८२ **प्रश्न**:–अच्छा ! अब तुम्हारा कहना क्या है सो बोलो.

उत्तर:–हमारा कहना यहही है की, आवरणविक्षेपरूप अविद्याके निवृत्त्यर्थ भगवद्भक्ति करना.

८३ **प्रश्न**:–अविद्याका अधिकरण निर्गुण होवेगा. सगुण कैसा होवेगा ?

उत्तर:– अविद्या अनुभवसे सिद्ध है. उसका अधिकरण निर्गुण है, सगुण नहीं, ऐसा कहनेमें कुछ फायदा नहीं.

और अविद्याका अधिकरण तो सामान्यचैतन्य है. व्यापकका नाम सामान्य है. सगुणकी व्यापकता पूर्व सिद्ध करी, जातें अविद्याका अधिकरण सगुणभी संभवे है.

८४ प्रश्न:–तो परमेश्वर अविद्याको विरोधी नहीं हुवा. और विरोधीबिना निवृत्ति नहीं बनेगी ?

उत्तर:-हां, बनती है. यह मृगजल, जल नहीं, इस प्रकार मृगजलस्थ भ्रमकी निवृत्ति सूर्यप्रकाशसेही होवे है, तहां तिसरे प्रकाशकी कुछ अपेक्षा नहीं, तथा परमेश्वराधिष्ठित अविद्याकी निवृत्तिभी भक्तोंको उसके भक्तीसेही होवे है. अथवा, रज्जुसर्पभ्रांतीमे यथा विरोधी दीपकी अपेक्षा है, तथा अपेक्षाही चाहे, तो अविद्याके विरोधी सत् मानना.

८५ प्रश्न:–भक्तीसे दोनों प्रकारकी अविद्या कैसी निवृत्ति होती है.

उत्तर:–पूर्वकथित जे भक्तीमें छः गुण, तत्स्थ ज्ञानगुणसे तो अविद्याके आवरणप्रकारकी निवृत्ति बने है. अवशिष्ट पांच गुणोंसे विक्षेपप्रकारकी निवृत्ति बने है.

८६ प्रश्न:–सा ध्यानादिगुणयुक्त भक्ति व्यापकपरमेश्वरविषय प्रथमही कैसे संभवे है ?

उत्तर:–नहीं संभवे तो क्या करना ? भक्ति अवतारदशामें बनती है.

८७ प्रश्न:–अवतारदशामें तो जीवके समान अल्पता होवेंगी ?

उत्तरः-नहीं. अवतार अविद्याबद्ध नहीं होते है. इसते अल्पता नहीं होती है.

८८ **प्रश्नः**-तो अवतार कैसे होते है ?

उत्तरः-उस सगुण परमेश्वरकाही गर्भमें, हृदयमें, वा बाह्य देशमें आविर्भाव होना, 'अवतार' है.

८९ **प्रश्नः**-अवतारका क्या लक्षण है ?

उत्तरः-एकसे अधिक जन्म होवे, तोभी मुक्तताभंग नहीं, वह अवतारका लक्षण है. वामदेवको गर्भमें ज्ञान हुवा था, जातें, सो जन्मसमय मुक्त भया था; परंतु तिन्ने दुसरा जन्म नहीं लिया. और **'बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि'** । अणे **'इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्'** । इत्यादि श्लोकोंमें भगवत्‌की सिद्धता और नाना जन्म प्रतीत होते है. जातें श्रीकृष्ण अवतार है.

९० **प्रश्नः**-तो जीवन्मुक्तभी अनेक जन्मरूप फलोन्मुख कर्म हुवा तो भगवद्भक्तीतें अपने मुक्तीको रक्षण करते है, तिनपरभी अवतारके कृतलक्षणकी अतिव्याप्ति होवेगी ?

उत्तरः-जीवन्मुक्त भक्ति करते है; अरु अवतारोंको किसीके भक्तीकी अपेक्षा नहीं. अथवा आवरणविक्षेपनिवृत्तीके पश्चात् जीवन्मुक्त पूर्ण होते है. तैसे अवतारमें नही. वे स्वयं पूर्ण होते है. इतनाही मुक्तोंमें अरु अवतारमें भेद है.

९१ **प्रश्नः**-जीवत् कालमें ईश्वरही है, यह जो आपने पूर्व कहा, तिसका क्या तात्पर्य है ?

उत्तरः-तिस बचनका लक्षणावृत्तीमें तात्पर्य है. इदं निरूपण 'विवेक चूडामणी' मेंभी श्रीमच्छंकराचार्यजीने क-या है.

'ऐक्यं तयोर्लक्ष्यतयोर्न वाच्ययोर्निगद्यतेऽन्योन्यविरुद्धधर्मिणोः।
खद्योतभान्वोरिव राजभृत्ययोः कूपांबुराश्योः परमाणुमेर्वोः॥

--विवेकचूडामणि.

९२ प्रश्नः-तो एषा लक्षणावृत्ति व्यक्त धर्ममें संभवे है, वा अव्यक्त धर्ममें संभवे है ?

उत्तरः-मुक्तोंके प्रारब्धकालिन् तो अव्यक्त धर्ममें संभवे है. अरु प्रारब्धनिवृत्ति होनेतें विक्षेपनिवृत्यनन्तर व्यक्त धर्ममेंभी संभवे है. जीवोंके अरु परमेश्वरके ज्ञानकी एकताही अव्यक्त धर्म है. तिस ज्ञानको छोरिके, केवल व्यक्त माननेहारेको भगवद्गीतामें अबुद्धि कहा है. अरु 'व्यक्त छोरिके केवल ज्ञानरूप अव्यक्त माननेहारेको अतिक्लेशतें मेरी प्राप्ति होवे है,' ऐसा कांतबचन है. अतो अव्यक्तरूप ज्ञान तथा व्यक्तरूप पंचगुणोंके सहित भक्तीही परमप्राप्तिजनयित्री है.

९३ प्रश्नः-तो परमप्राप्ति फल होनेके पश्चात् साधनरूप भक्तीका नाश व्हय जावेगा ?

उत्तरः-जैसे पुत्र होनेपर मातापिताका नाश नहीं होता है, किंतु कुलवृद्धि मात्र होती है; तैसे परमप्राप्तिके

अनंतर भक्तीका नाश नहीं होता है. किंतु प्रेमवृद्धि अधिक होती है. यहां 'परमप्राप्ति' शब्द विदेहमुक्तिवाची है.

९४ **प्रश्न**:–विदेहमुक्तीमें अत्यंत ऐक्यता होनेतें भक्ति कैसी संभवेगी ?

उत्तर:–संकेतदृष्टीसे अत्यंत ऐक्यता तो जीवन्मुक्तीमेंभी है. तहां जैसी भक्ति होवे है. तैसी प्रेमरूपसे विदेहमुक्तीमेंभी होवे है. तत् प्रेम अनिर्वचनीय है, बोलनेके योग्य नहीं. नारदजीनें कह्या है '**अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्**' अरु तातनेभी कह्या है:–

चौपाई:–'चंदनसौरभ चन्दनमाही । चंद्रिका कृत्रिम शशिमाही ।
तथा क्रिया निश्चयकरि नाहीं । किंतु भक्ति अद्वैतके माही ।।

दोहा:–'**तहां अनुभवहि प्रमाण है नहीं शब्दजंजाल ।
अतो ज्ञानोत्तर धरो हरिचरणोंपर भाल ।।**

एवं 'अमृतानुभवमें' भी श्रीगुरुनाथने प्रतिपादन कऱ्या है.

दोहा:–'**कोई एक अकृत्रिम भक्ति निजसुखधाम ।
ज्ञानभूमिका योगका निर्विकल्प बिश्राम ।।**

९५ **प्रश्न**:-अवतारका दृष्ट लक्षण क्या है ?

उत्तर:–अन्यथा कर्तुंशक्ति आदि.

९६ **प्रश्न**:-एते लक्षण तो विक्षेपनिवृत्त्यनंतर ईश्वरसायुज्यगत सिद्धोमेंभी मिलते हैं.

उत्तर:–तदा सिद्धीका पृथक् संज्ञा नहीं रहती है, ईश्वरसंज्ञा हो जाती है, जातें विरोध नहीं. पृथक् सिद्धोंको 'अन्यथा कर्तुं शक्ति' नहीं बनेंगी. और परमेश्वरको बनती है. यथा श्रीज्ञानेश्वरने भैंसाको वेद कहनेको लगाया. जातें हमारे तात है. यहभी एक अवतारोंका दुसरा लक्षण है.

९७ **प्रश्न**:–'**उपासकानां कार्यार्थं ब्रह्मणो रूपकल्पना**' इस श्रृतीमें अवतारके कल्पित कह्या है.

उत्तर:–उपासनार्थ जे अवतार है तिसकोही कल्पित कह्या है. भक्त्यधिकरण अवतारको कल्पित कह्या नहीं. यथा, '**त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः**'। श्रुत्यर्थः–"पूर्णमेसे पूर्ण निकाले तो जैसा पूर्णही रहता है, तैसा तू विश्वतोमुख होनेतेंभी, तैसाही तेरा जन्म श्रवण होता है. अर्थात्, अविर्भावसमय वा तिरोभावसमय, तू वैसाही 'विश्वतोमुख' है." और '**संभवामि युगेयुगे**'। '**स्वेच्छामयस्य न तु भूतमयस्य कोऽपि**'। इत्यादि श्रुति कल्पनारहित स्वयं अवतारतामें प्रमाण है.

९८ **प्रश्न**.–तो अवतारभी नित्य भये ?

उत्तर:–हां. नित्य होते है. नीलकंठाचार्यने जो गीतापर टीका किई, उसमें कहा है की, 'परमेश्वर अपने अवतारशरीरका उपसंहार नहीं करता है.'

९९ **प्रश्न**:–'**प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाम्यात्ममायया**'।

इस श्लोकमें भगवानने अपने शरीरको 'मायाजनित' कह्या. तो अवतारकी नित्यता कैसी बनेंगी ?

उत्तर:-'प्रकृति' अरु 'माया' शब्द तहां शक्तिवाचक है. तहां सज्जनरक्षा अरु दुर्जननाश, इनके अर्थ जो अवतारमें शक्ति दीखती है, ताका नाम 'प्रकृति' है. अरु केवल लीलाविलासरूप अवतारशक्तिका नाम 'माया' है. **'लोकवत्तु लीलाकैवल्यम्'** । इदं ब्रह्मसूत्र तहां प्रमाण है. सूत्रमें 'लोकवत्' यह प्रथम शब्द होनेतें, अरु 'लीला' शब्दके पश्चात् 'कैवल्य' यह शब्द होनेतें, दृष्टांतरूप सर्व लोक, लीलाका एक देश हैतिये. अवशिष्ट अवतारलीला स्वतंत्र है इति. शक्तिशक्तिमत् इनका अभेद होनेतें इन लीलादिशक्तिकी पृथक् कल्पना करनी नहीं. शक्तिशक्तिमत्, धर्मधर्मी, इत्यादि भेदपूर्वक शब्दनके प्रयोग बालबुद्धीको जणावणेकेलिये किये जाते हैतिये.

१०० प्रश्न:-सज्जनकी रक्षा अरु दुर्जनकी शिक्षा यह विषमता विदित होनेतें, अवतारके शरीरमें सांख्यपरिकल्पित सत्वादिगुणसाम्यप्रधानका अभ्युपगम अनुमान होता है ?

उत्तर:-साधूको अरु दुष्टको समान मोक्षफलप्रदान करनेतें अवतारोंमें विषमता नहीं. रक्षा, शिक्षा केवल अपनी अपनी बुद्धीतें प्रतीत होवे है. जैसे, चंद्रमा देखकर चकोरको आनंद होवे है, विरहिणीको ताप होवे है, अरु तस्करोंको द्वेष उपजे है. अयं केवल बुद्धिमात्र आरोप है.

शशांक तो सबको प्रकाशही देवे है. तथा अवतारोंकी रीतिभी जाणिलेना. जैसे तातनें कह्या है:-

दिंडी :--गोपिकाको कामतें प्राप्ति मेरी । दैत्यदानवको द्वेषतें पधारी ।
प्रणतरक्षण ये खेल यस्य होवे । भक्तितें सो चित्तमें प्रभू पावे ॥

चौपाई:--लीलामय केवल अवतारा । व्हयकरि मूर्ति जनभवतारा ।
मुक्त करत गुणगान जिनोके । राखती हूं शिर पगपे तिनोंके ॥

१०१ प्रश्न:-अवतार कितने प्रकारके है ?

उत्तर:-चार प्रकारके. १ उत्थानाधीन, २ कार्यार्थ, ३ उपासनार्थ, और ४ भक्त्यधिकरण. वैकुंठादि लोकमें जाकर किसी प्रबल उत्थानसे जन्म लेना सो प्रथम अवतार है. जैसे, इंद्रादिक. जगद्व्यवस्था करनेकेवास्ते अवतार लेना सो द्वितीयावतार है. जैसे, मन्वादिक. देवोंकी वा मनुष्योंकी उपासनारूप प्रार्थनासे अवतार लेना तृतीय है. यथा रामादिक. '**ब्रह्मणो रूपकल्पना**' यह श्रुति 'रामतापनीय' में है. '**एकाकी न रमते**' इस श्रुतिवचनानुसार भक्तनके साथ क्रीडा करनेके लिये लीलासे अथवा स्वेच्छासे जो अवतार है, सो चतुर्थ है. यथा श्रीकृष्ण.

१०२ प्रश्न:-इसमें जाननेका कुछ विशेष है ?

उत्तर:-हां. उपासनार्थ और भक्त्यधिकरण, ये दो अवतार विशेष विग्रहवान् होते है.

१०३ प्रश्न:-विग्रहका नाम क्या है, ये पृथक् पृथक कहो ?

उत्तरः–१ कायविग्रह, २ शक्तिविग्रह, ३ वस्तुविग्रह, ४ लीलाविग्रह. तहां प्रथम तो दत्तात्रेयादिकोंमें रहते है. द्वितीय रामादिकोंमें रहते है तृतीय व्यंकटेशादिकोंमें रहते है चतुर्थ वेकुंठस्थ विष्णुआदिकोंमें रहते है. और चारों एकत्र श्रीकृष्णमें रहते है.

१०४ **प्रश्नः**–यह सब श्रीकृष्णमेंही क्यौं रहते है ?

उत्तरः–वह पूर्णावतार है करके.

१०५ **प्रश्नः**–पूर्णावतारका लक्षण आपने पूर्व ईश्वरत्व और शिष्टत्व एकत्र कह्या था. तदंतर्गत ईश्वरत्व तो सांगोपांग कहा. अब शिष्टत्व का लक्षण कृपा करके कहिये.

उत्तरः–**'फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्वे सति वेद-प्रामाण्याभ्युपगन्तृत्वं शिष्टलक्षणम्'** अर्थः––जिस साधनका जो फल मिलता है सो फल जानना, **'फलांशभ्रांतिरहितत्व'** है. और साधन जानना, **'साधनांशभ्रांतिरहितत्व'** है. वेदको प्रत्यक्षानुमानसेभी वरिष्ठ अभ्युपगम करके मानना, **'वेदप्रामाण्याभ्युपगंतृत्व'** है.

१०६ **प्रश्नः**–**वैदिककर्मकर्तृत्व** 'शिष्टलक्षण' क्यौं नहीं मानते हो ?

उत्तरः–यह शिष्टका लक्षण नहीं होता. क्यौंकी, अखिल वेदकर्मकर्तृत्व मानना, वा किंचित् वेदकर्मकर्तृत्व मानना ? अखिल वेदकर्मकर्तृत्व जीवको शक्य नहीं. अरु जैमिन्यादिकोंने अपनी अपनी शाखाकाही कर्म किया. जातें,

ते शिष्ट नहीं होवेंगे. अरु किंचित् वेदकर्मकर्तृत्व माने तोभी समीचीन नहीं. '**मा हिंस्यात्सर्वा भूतानि**' इस श्रुतीके अनुसार बौद्धादिकभी अहिंसा कर्म करते है, तेऽपि शिष्ट होवेंगे. अतो, वेदकर्मकर्तृत्व शिष्टलिंग संभवे नहीं.

१०७ प्रश्नः–तो '**फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्व**' शिष्टलक्षण मानो.

उत्तरः–वैसा माने तो मैथुनसाधनसे पुत्र होता है, और मैथुनका साधन स्त्री है. एवं '**फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्व**' चार्वकादिकोंको संभवे है. अतः, इदमेव सिद्धमभवत् की, '**फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्वे सति वेदप्रामाण्याभ्युपगंतृत्वं शिष्टलक्षणम्.**' एतत् शिष्टलक्षण मन्वदिकोंमें वास करे है. जातें, मनु क्षत्रिय होकेभी, ऋषियोंको ब्राह्मणधर्म कहे, ते वेदप्रामाण्याभ्युपगमतासे कहे. वेदकर्मकर्तृत्वकी तिनको अवश्यकता न थी. अतोऽनधिकार शंकनीय नहीं. परंतु तिनमें ईश्वरत्व नथा. '**विवस्वान्मनवे प्राह**' इस वाक्यतें तिनकी पूर्व अल्पज्ञता सिद्ध होनेतें, तथापि ते देवता होनेतें, अरु शिष्ट होनेतें, परमेश्वरके अंश थे. श्रीरामको वेदकर्मकर्तृत्व था; अरु ईश्वरत्व था. जातें तिनमें मुख्यांशत्व है. शिष्टत्व नहीं. और श्रीकृष्णमें तो शिष्टत्व और ईश्वरत्व दोनोंभी है. क्यौंकि, '**फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्व**' तिनमें

था. परंतु फलकी अपेक्षा आप स्वयं नहीं कीनी. और गीतामें '**वेदप्रामाण्याभ्युपगंतृत्व**' प्रत्यक्ष दीखता है. जातें श्रीकृष्ण शिष्ट थे. नंदपिताको जज्ञके अधिकारका निषेध किया. ऐसा वेदप्रामाण्याभ्युपगम करके इंद्रका गर्वनाश फल, और गोवर्धनपूजा तिसका साधन, ऐसे फलसाधनांशेमे भ्रांतिरहितत्व था. देवताओंके '**फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्व**' जीवशिष्टोंसे नहीं बनता है. जातें, श्रीकृष्णकी शिष्टता अनादि है. और जारभावरत गोपिकाकाभी जिवंत अपवर्ग-संस्थान किया. जातें, '**अन्यथाकर्तुं**' शक्ति होनेतें तिनमें ईश्वरत्व था. अरु अशिष्ट जो होते है, सो अपने कर्मके समान लोकोंको करावते है. श्रीकृष्णने कहीं मैथुनोपदेश किसीको नहीं कऱ्या. जातें, ते परमशिष्ट थे.

१०८ **प्रश्न**:–शिष्टत्व और वेदकर्मकर्तृत्व हुवा, तो विशेष है वा नहीं ?

उत्तर:–कुछ विशेष नही. काहे तें, वेदकर्मकर्तृत्व नियमतें होवे तो शिष्टसामर्थ्याभिव्यक्ति नहीं होवेंगी.

१०९ **प्रश्न**:–तो मुख्य परमात्मा शिष्ट है वा नहीं ?

उत्तर:–हां, है. जीवोंके विषयमें '**फलसाधनांशे भ्रांतिरहितत्व**' अरु तिन फलसाधनको जणानेके लिये, '**वेदप्रामाण्यभ्युपगंतृत्व**' भी ईश्वरमें है. जातें परमात्मा पूर्ण शिष्ट है.

११० प्रश्नः-तो जैसा शिष्ट लोक अपने बुरे कर्मका उपदेश नहीं करते है, अपने अच्छे कर्मका उपदेश लोकोंको करते है, तैसा ईश्वरने कहीं कऱ्या है वा नहीं ?

उत्तरः–हां कऱ्या है. '**यान्यस्माकं सुचरितानि तान्येव त्वयोपास्यानि नो इतराणि**' श्रुत्यर्थः–'हमारे अच्छे कर्मोंको तूने ग्रहण करना. अन्योंको नही.' यह ईश्वर-मुखकी श्रुति है. अतो, ईश्वर शिष्ट है, यह निश्चित है. और पूर्व षड्भगसमवायतें ईश्वरत्वभी है. यह ईश्वरत्व और शिष्टत्व दोनोंभी श्रीकृष्णमें रहते है. अतः श्रीकृष्ण पूर्णस्वरूपावताराविर्भाव है.

१११ प्रश्नः–पूर्वकथित षड्भग श्रीकृष्णमें कथन करो.

उत्तरः–हे सखि ! श्रीकृष्णस्य मुखमुरलिनादेन यस्माद्देवांगना मोहिता अभवन् तस्मात् तिनमें 'श्री' नाम भग निश्चयकरके है. अरु 'यश' का वर्णन गिरीधर कविरायने किया है. सो इस भांति है.

**कुंडलियाः–'साईं एको गिरी धऱ्यो गिरिधर गिरिधर होय।
हनूमान दुइ गिरि धऱ्यो गिरिधर कहे न कोय।।
गिरिधर कहे न कोय हनु द्रोणागिर ले आयो।
ताको कणक पडो एक तूट सो श्रीकृष्ण उठायो।।
कहे गिरिधर कबिराय बडनकी बढी बढाई।
थोडेमें जस होय जसो पुरुषकी ताई।।'**

सुदामापृथुभक्षणतें सुवर्णनगरी प्रदान कीनी, इत्यादि 'औदार्यके' लक्षण है. '**परित्राणाय साधूनां । संभवामि युगे युगे**' । यह 'अभयप्रदान' औदार्यका लक्षण है. दैत्योंको अने ऋषियोंको समान मोक्षफल दीना, यह 'अभेदौदार्य' का लक्षण है. गुरूकी इच्छानुसार और माताकी इच्छानुसार पुत्रप्रदान कीना यह 'दातृत्वौदार्य' का लक्षण है. चतुर्विध औदार्य ऊपर कहा है. तिसमें प्रथम तो 'सामान्यौदार्य' है. और अन्य सब औदार्योंकी संज्ञायें कथन कर दीनी है. '**चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं**' । यह 'व्यवस्थाकारी' ज्ञानका लक्षण है. '**न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः**' । यह 'बंधनिवर्तक' ज्ञानका लक्षण है. भोजन छोर द्रौपदीके घर आये, अभिमान देख रासमें गुप्त भये, यह 'विषयत्यागरूप' वैराग्यका लक्षण है. यादवपुरीको स्वयं छोर दिया, यह 'संगत्यागरूप' वैराग्यका लक्षण है. विदुरगृह जाय यावनालान्न भक्षण किया, यह 'यदृच्छालाभ' वैराग्यका लक्षण है. उग्रसेनको राज्यपर बिठाया, आप नहीं बैठे, एतत् 'इहफलभोगविराग' लक्षण है. सत्यभामाके बचनसे दान गये, रुक्मिणीके बचनसे तप किया, यह 'प्रारब्धावधारण' वैराग्यका लक्षण है. स्यमंतक मणि सत्राजित के कन्याकोही दिया, पारिजातक वृक्षकेबिना और स्वर्गका कछु नहीं लिया, यह 'अमुत्रफल-भोगविराग' लक्षण है. गोपिओंको कामतें मुक्त किया, नारदको माया बताई, आनंदका क्रीडास्थान गोलोक किया,

मुखमे अनंत ब्रह्मांड दर्शाये, अपनाही रूप व्यापक करके अर्जुनको विश्वरूप बताया, यह 'पूर्णता ऐश्वर्य' का लक्षण है. धर्मसदनमें उच्छिष्ट पात्र निकारे, कालयवनके भीतीसे पलायन कीना, गांधारीका शाप अंगिकार किया, पांडवोंको स्थानस्थानमे अपने प्राणतेंभी ऊपर रक्षण किये, एतत् 'ब्रीदावधारण' ऐश्वर्यका लक्षण है. भोग भोगकर ब्रह्मचारी कहते, प्रेत उठाया, इत्यादि अवशिष्ट लीला 'कर्तुमकर्तु-मन्यथाकर्तुं शक्ति ऐश्वर्य' प्रदर्शक है.

११२ **प्रश्न**:–हे सखि ! कुछ 'ज्ञानोपनिषदंतर्गत' लक्षण तुम्हारे श्रीकृष्णमें है वा नहीं ?

उत्तर:–हमारे प्रभूमें तटस्थ लक्षण और स्वरूप लक्षण, ये दोनोंभी रहते है. **'कृष्णाय देवकीपुत्राय'** यह 'सामवेदीय' श्रुति है. **'ब्रह्मरात्रे उपावृत्ते'** ऐसी द्वापारमें रासलीला भयी. और कलजुगमें नृसिंहमेहता तथा अस्मदादिकोनें देखी है, देखते है, और देखेंगे. एवं त्रिकाला-बाध्यता होनेतें अस्मत्प्रभुमें 'सत्यता' स्वरूप लक्षण संभवे है. अरु **'पालिता गोपसुंदर्यः स कृष्णः क्वापि नो गतः'** । इस पद्मपुराणवाक्यतें मेरे भरणकारी कही गये नहीं, ऐसा निश्चय है. निजधामगमनका कथन मंदाधिकारियोंके लिये है. अरु चरणदास प्रभु कहे है 'दिव्यदृष्टिबिन दृष्टि न आवे' एवंभूत वृंदावनको और श्रीकृष्णको, हे सखि ! तू दिव्यदृष्टीसे जान. गीतादिवचनतें अविद्या दूर करनेतें

'ज्ञान' लक्षण संभवे है, और जननीको भित्ति, स्तंभ, आकाश, पृथ्वी यह सब अपना रूप दिखावनेतें, तथा सब गोपियोंके समीप रासमें अनंतमूर्ति बननेतें, सोलह हजार स्त्रियोंका लग्न एक समय करनेतें, अरु नारदको प्रत्येक गृहमें अपना स्वरूप दिखावनेतें, 'अनंतता' लक्षण रहे है. अखंड रास करनेतें, और गोलोक व्रज, और भक्तोंके हृदय, इसमें उल्लसित रहनेसे, 'आनंदतारूप' लक्षण रहे है. एवं 'स्वरूपलक्षण' सिद्ध भया. वत्साहरणकालमें नूतन गोपालकी उत्पत्ति करनेतें, नंदको बैकुंठ बतावनेसमय सब जनका पालन बतावनेतें, अरु अर्जुनको विश्वरूपमें सबका लय बनावनेतें, 'तटस्थलक्षण' सिद्ध होवे है. '**त्वत्तोऽस्य जन्मस्थितिसंयमान्विभो**'। यह वसुदेवस्तुतीका 'तटस्थलक्षण' पर श्लोक है. '**सत्यज्ञानानंतानंदमात्रैक-रसमूर्तय:**'। यह ब्रह्मदेवने दर्शन किया, तबका 'स्वरूपलक्षण' पर श्लोक है. एवं हमारे प्रभूमें वेदोक्तलक्षणसिद्धि सिद्ध है.

११३ प्रश्न:—'अव्यक्तं व्यक्तिमापन्नं' इस श्लोकका अर्थ तुम क्या करते हो ?

उत्तर:—माहात्म्यज्ञान और व्यापकता नहीं जानके भगवानकी मनुष्यरूप लौकिक व्यक्ति मानते है, तिसका निषेध इस श्लोकमें कहा है. इसके समन्वयके लिये यह निर्णायक स्पष्ट वाक्य है:—

'अवजानंति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्'

११४ प्रश्नः—तुम्हारा पूर्णावतारकी भक्ति करनेमें क्या हेतु है ? और अंशोंकी क्यंव नहीं भक्ति करते हो ?

उत्तरः—अंशमें भक्तिही नहीं संभवती है. तथापि हमारा हेतु पूंछती हो तो सुन. मै पत्नी हूं, और श्रीकृष्णको पती मानती हुं.

११५ प्रश्नः—ऐसाहि क्यंव करते हो ? अन्य वात्सल्यादि क्यंव नहीं ?

उत्तरः-समस्तविषयसमर्पणबिना द्वेषक्लेशकीनिवृत्ति होवे नहीं. और समस्तविषयसमर्पण जैसे पतीको पत्नि करे है, तथा अन्यत्र संभवे नहीं. और पतित्व तो श्रीकृष्णसिवाय अन्य किसी अवतारमें बने नहीं. जाते, मैं श्रीकृष्णकी भक्तिही परम मानती हूं. मन्वादिकोंमें शिष्टत्व है, जातें ते गौणांशावतार अरु आप्त है. श्रीरामादिकोंमें ईश्वरत्व है. अरु शिष्टत्व न्यून है. अतो अनुकरणशिक्षातें, ते हमारे पिता संभवे है. पति तो एक श्रीकृष्णही होते ह. काहे तें ? पतीकी आज्ञापालन और तिनसे सुखप्राप्ति, यह स्त्रियोंको चाहिये. पितासे वा अन्योंसे सुखप्राप्ति नहीं होती है. आज्ञापालन मात्र होता है. तथा पिता रामादिक और आप्त मन्वादिक है. इसवास्ते तिनमें पूजनादि उपासना तो संभवेगी. किंतु तहां भक्ति करना मेरेको अत्यंत दुस्तर जाता है. अरु श्रीकृष्ण मेरे प्रिय पति होनेतें, ' गीता ' अरु ' एकादश स्कधादि ' आज्ञाका पालन, और रासक्रीडादिसे

सुखप्राप्ति, यह दोंनों हमको प्राप्त होनेतें, हम तिनकेही भक्तीमें परम धन्यता मानते है. विषयसमर्पण करनेसे राग निवृत्त भया, सुखप्राप्तीसे द्वेष निवृत्त भया, और पूर्वकथनानुसार भक्तीसे अविद्यादिक क्लेश निवृत्त भये. यह जो गौणप्रेमरूप भक्ति, सा पूर्ण ब्रह्मनिष्ठ होनेपरभी निवृत्त नहीं होती है. क्यौंकी, ब्रह्मपरमप्रेमास्पदताही भक्ति है. अरु जैसी गंगा समुद्रको मिलती है, तहां पानी तो अद्वैत रहता है, तोभी प्रवाहरूपसे मिलना छूटता नहीं. और मत्स्योंको जैसी पानीमें रहके पानीकीहि प्यास लगती है, तैसी ब्रह्मनिष्ठकोभी ब्रह्ममें रहके, ब्रह्मके भक्तीकी तृषा लगती है. तामें श्रीशुकाचार्यबचन प्रमाण है. सा तृषा अहेतुक होती है.

११६ प्रश्नः–भक्तोंको कुछ प्रारब्धका डर नहीं ?

उत्तरः–तिनको वियोगदशामें एकएक क्षण कल्पके समान जानेतें क्षणक्षणमें तिनकी कल्पकल्पके प्रारब्धके दुःखकी निवृत्ति होती है. परंतु तिस वियोगदुःखमें आनंदभंग नहीं होता है. पश्चात् सुखरूप रहा जो प्रारब्ध, सो परमेश्वरके संयोगसे भुक्त होता है. तोभी भक्तीकी तृषा बनी रहती है. तातें, संयोगवियोगव्यवहार बनाही रहता है. परंतु अद्वैतानंदका भंग नहीं होता. अयमनुभव मेरे सखियोंकोभी होता है. और तात ऐसे कहते हैः–

दोहा:-"अद्वैतमें भक्ति है शब्दरहित सा जान।
पतिव्रताकोही बने कांतसौख्यपहचान ॥"

अरु शुकाचार्यभी 'अहेतुक भक्तिका कारण ब्रह्मप्राप्तिके अनंतर भगवन्महिमाही है, और ओ भगवंतही जाने, हमको अनुभव मात्र है,' ऐसा कहते है. हे सखि ! मेरी वृत्ति अब क्षीण भयी है. तुजको ग्रहण नहीं होता, तो तू अपने संस्थानपर जा. मेरेसे किया गया उतना समाधान कोना.

११७ प्रश्न:-(सखिबचन) हे प्यारी ! श्रीगुरुरूपे जगज्जननी ! मै आपकी शिष्या भई हूं. कृपा करके मुझको ग्रहण करो. अरु शुकाचार्यादिकोंने क्या कह्या, उतना सुनायके मेरे श्रवण पवित्र करो. पश्चात् मैं कुछ नहीं पूंछती हूं।

उत्तर:-हे प्यारी ! मैने तुजको पूर्वही ग्रहण किया है. अब तू अपने बिनतीके फलको देख. शुकाचार्य कहते है :--

"आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रंथा्प्युरुक्रमे।
कुर्वंत्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगणो हरिः॥"--श्रीमद्भागवत

११८ प्रश्न:-हे सखि ! एते वचन वृंदारकवाणीप्रचारी होनेतें, तथा सूत्रप्राय होनेतें तिनके स्पष्टार्थको पूर्वपक्ष-निर्धारपूर्वक मैं जानती नहीं. अतो, कृपा करके यथा मोतें अनुगम संभवे, तथा कहिये.

उत्तरः–हे सखि ! मैने इतना कह्या, तदापि तू तर्कपूर्वक अर्थ जाननेकी बांछा करती है. तत् समीचीन नहीं. काहे तें, श्रुति स्पष्ट तर्कका निषेध करे है. **'नैषा मतिस्तर्केणापनेया ।'** "इस मतीको तर्क करिके निष्प्रयोजन दवराना नहीं." अयं ता श्रुतीका अर्थ है अरु जिस श्रुतीमें तर्ककी उपलब्धि होवे है, सो तर्कभी दुर्जनकृत कुतर्कजालापाकरणार्थ है. सिद्धांतप्रतिष्ठापनार्थ नहीं. जातें तू तर्कपूर्वक भक्ति मिलानेकी वांछा मति कर. अरु दुर्जनकृत तर्कजालका खंडन इस ग्रंथमें पूर्व करेला है.

११९ **प्रश्नः**–गुरु और शास्त्रतें श्रवण होवे है. श्रुतार्थसाधक अरु विरुद्धार्थबाधक इन युक्तियोंकरी मनन होवे है. तथा अनुभवतें निदिध्यासन होवे है. एवंविध श्रवणादिकोंका असंकर पूर्वाचार्योक्त होनेतें-भक्तीमें तर्ककी अवश्यकता नहीं, यह कहना असंगत है.

उत्तरः–श्रवणजनितसगुणपरमात्मावच्छिन्नप्रत्यक्षवस्तुप्रतिष्ठश्रद्धाबलतें भक्ति उपजे है. तातें तिसमें मननकी अवश्यकता नहीं. अरु वेदांतमेंभी जो मनन कह्या, सो आत्मज्ञानके अर्थ नहीं. किंतु प्रमाणअसंभावना तथा प्रमेयअसंभावनाके निवृत्तीके अर्थ कह्या है. अरु भक्तिमीमांसामें जो स्वप्नेश्वराचार्य भक्तीमें तर्कावश्यकता कथन करते है, सा श्रवणादररक्षणार्थ है. अरु भक्त्युत्पत्त्यनंतर तो केवळ श्रद्धाके बलतें परमात्माका ध्यानादि भजन मात्र

करना है. अरु आत्मज्ञान तो भगवत्की कृपातें तथा गुरुरूपसंतमुखद्वारा महावाक्योंके उपदेशतें श्रवणादरादि-निष्ठजनितशुद्धचित्त पुरुषको स्वयं उपजे है.

१२० **प्रश्नः**–स्वामी विद्यारण्यने "विवरणप्रमेयसंग्रहमें" ध्यानको कर्तृतंत्र कह्या. जातें ध्यानादिगुणोंकरी भक्तीकी नित्यता नहीं सिद्ध होवेगी.

उत्तर:–स्वामी विद्यारण्यका अभिप्राय उपासनागत-ध्यानखंडनपर है. अन्यथा, **'यस्य देवे परा भक्तिः'** । इस श्रुतीका विरोध होवेगा. और विद्यारण्यस्वामी कहते है की, ध्यान तो स्मृति नहीं, प्रत्यभिज्ञाभी नहीं, किंतु मनोराज्य मात्र है. क्योंकि, प्रसिद्ध शालिग्रामशिलादौ जो चतुर्भुजमूर्त्यादिकोंका आरोप किया जावे है, तिसकरिकेभी ध्यान मनोराज्य मात्र सिद्ध होवे है. इति. तहां मैं पूंछती हूं, यह कथन उपासनांतर्गत ध्यानके विषय है, वा भक्त्यंतर्गत ध्यानके विषय है? यदि प्रथम पक्ष माने, तो हमे इष्टापत्ति है. क्योंकी 'पंचदशीके ध्यानदीपमें' उपासनांतर्गत ध्यानकोही कर्तृतंत्रता कही प्रतीत होती है. इस स्वकथनतेभी अविरोधपूर्वक अस्मदीयेष्टापत्ति सिद्ध होवे है. अरु द्वितीय पक्ष माने, तो संभवता नहीं. काहे तैं, भक्तोंको शालिग्रामादिस्थानोंमें चतुर्भुजाद्यारोप करकेही भक्ति उत्पन्न होवे है, यह केवल नियम नहीं. किंतु, कर्मफलत्यागपूर्वक भोगालंबुद्धिसहित कर्म भगवदर्पणादिविधिना शुद्धचित्त

होनेपर आप्तलक्षणविशिष्ट संतोंके मुखद्वारा नामरूपगुणमय-भगवल्लीलाश्रवणतें नियमकरी भक्ति उत्पन्न होवे है, इति ते आप्तमुखद्वारा श्रुत भगवन्नामरूपगुण परोक्षज्ञानरूप होनेतें भ्रांति न हैतिये. एतत् कथन स्वामी विद्यारण्यनें ध्यानदीपमे कऱ्या. अरु तहां जो संवादिभ्रमवत्ता कही, सा उपासनांतर्गत ध्यानके अर्थही बनेंगी. तथा न माने, तो आप्तमुखद्वारा श्रुत विष्ण्वादिमूर्तियोंका परोक्षरूप तत्वज्ञान है. भ्रम नहीं; ब्रह्मरूपता होनेते जा उत्तर वाक्यतें विरोध होवेगा. अरु परोक्षज्ञानको भ्रम कहे, सो बने नही. काहे तें, भ्रममें विषयकी असत्यता अपेक्षित है; अरु परोक्षज्ञानमें नहीं. अरु परोक्षज्ञानको संवादिभ्रम कहे, तोभी बने नहीं. क्यौंकि, संवदिभ्रमका फल काकतालीयन्यायवदनियत कह्या हैं, नियत कह्या नहीं. अरु परोक्षज्ञानतें अविद्याके असत्वापादक आवरणरूपांशकी निवृत्ति पंचदशीके तृप्तिदीपमें कही है. जातें विष्ण्वादिमूर्ति-योंका ब्रह्मरूपताकरके परोक्षज्ञान गुरुशास्त्रद्वारा निश्चित हेतुकरके भ्रमरूप न होनेतें वस्तुतंत्र है. अरु परोक्ष होनेतें भक्तके असत्वापादक आवरणरूप अविद्यांशका निवर्तकभी है. जो कहे की, तत्परोक्षज्ञान भ्रमरूप नहीं, किंतु तिस परोक्षज्ञानमूर्तीका ध्यानही भ्रमरूप है. तो बने नहीं. काहे तें, परोक्षज्ञातका ध्यान परोक्षज्ञानानंतर अपरोक्ष ज्ञानकेलिये ब्रह्मविचार तथा ब्रह्मनिदिध्यासनके समान है. परोक्षज्ञातका

ध्यान भ्रांतिरूप है, यह आग्रहतेंही कहे, तौं परोक्षब्रह्मज्ञानानंतर अपरोक्ष ज्ञानके अर्थ ब्रह्मविचार अरु तिसका निदिध्यासन कह्या, सोभी भ्रांतिरूप होवेगा. अतो साक्षात् सगुण ब्रह्मका ज्ञान अरु भक्त्यंतर्गत ध्यान परोक्ष होनेतें भ्रांति नहीं. स्वामी विद्यारण्यवाक्यकरीही सिद्ध होवे है. अरु जो वादी यह यौं कहे की, परोक्षज्ञातका ध्यान ध्यातृवृत्त्यधीन होनेतें यावत् ध्यान तावत् सगुणब्रह्मज्ञान रहे है. ध्यान छूट जाय तो रहे नहीं. सो शंकाभी निर्मूल है. क्यौंकि, जबतक सगुणब्रह्मकी दृढता होवे नहीं, तहांलो ध्यान करनेका तथा छूटनेका नियम होवे है. सगुणब्रह्मके समाधीमें सो नियम रहे नहीं. एवं ब्रह्मज्ञानकोभी निदिध्यासनकेअर्थ क्षणक्षण वृत्तीकी प्रत्यावृत्ति करना अवश्य है. अरु कहे की, प्रत्यावृत्ति नष्ट होनेपरभी ब्रह्मता नित्य होनेतें किमपि हानि नहीं. तो ध्यानमें प्रत्यावृत्तीके अर्थ सगुणब्रह्मका ज्ञानमय संस्कार, ताकरिके अनुमित सगुणब्रह्मकी नित्यता होनेसेभी किमपि हानी नहीं. अतो ध्यानानवश्यक नहीं इति. एषा परोक्ष सगुणब्रह्मभक्ति गौणीरूप होवे है. और पराभक्तीमें सगुणब्रह्म प्रत्यक्ष होवे है. परंतु बिनागौणी पराभक्ति होवे नहीं. जातें, भगवत्परोक्षज्ञान आदौ अवश्य चाहिये. तत् पूर्वोक्त आप्तरूप गुरु वा आगमद्वारा बने है. तहां भगवत्कृपाकीभी अपेक्षा है.

'मुख्यतस्तु महत्कृपयैव भगवत्कृपालेशाद्वा' । (ना. भ. सू.)

इस सूत्रकरी नारदजीने यहही निरूपण कन्या. सत्संगकरी भगवत्कृपा अवश्य व्हय जावे है. 'योगवासिष्ठमें' जो भगवदनुग्रह सत्संगके प्रथम कह्या है, सो कर्मार्पणद्वारा चित्तशुद्धिरूप जाणिलेना. अन्यथा नारदीयसूत्रविरोधापत्तेः. जो कहे की, नारदीयसूत्र भक्तिपर होनेतें व्याससूत्रवत् प्रमाण नहीं, तौं व्यासके सद्गुरु नारद है, यह पुराणकरी सिद्ध होनेतें, गुरुवाक्याप्रामाण्यबलतें शिष्य जे व्यास तिनके सूत्रभी अप्रमाण होवेंगे. यह भक्तिरहित ज्ञानवादियोंको बडा कष्ट है. अरु नारदतें भिन्न व्यासके गुरु वेदमें कोई कहे नहीं. जातें, नारदविषे वैय्यासिकगुरुत्व-निश्चायकमें पुराणप्रामाण्यबाध नहीं. इति. ननु व्याससूत्रकी व्यासके बचनकरीही प्रामाण्यता हम मानते नहीं. किंतु ते सूत्र वैदिकवाक्योंका समन्वयरूप होनेंतें प्रमाण मानते है, इत्थं यदि कोई वादी कहे, तो समीचीन नहीं. काहे तें, समन्वयाध्यायको छोरिके जो स्मृत्यविरोधाध्याय, सो अप्रमाण होवेगा. अरु जो कहे की, समन्वयाऽविरुद्ध युक्तियोंकरी द्वितीयाध्यायप्रामाण्य हम माने है, तो मैं पूंछती हूं की, ता युक्तिया समन्वयस्थशब्दसमुदायके शक्तिवृत्त्यविरुद्ध है, वा लक्षणावृत्त्यविरुद्ध है ? तहां आद्य पक्ष माने, तो उपासनाभिमानी द्वैतमतवादियोंका वेदसमन्वय शक्तिवृत्त्यविरुद्ध भाष्यभी प्रमाण मानना परेगा. अरु अंत्य पक्ष माने, तो शिष्यबोधके अर्थ लक्षणावृत्ति

गुरुअभ्युपगत होनेतें, तुमने जो वेदसमन्वयकी अपेक्षाकरी व्यासके वचनमात्रपर स्थापन कऱ्या दौर्बल्यदोषतिसकरी लक्षणावृत्त्यविरुद्धा युक्तियांभी अप्रमाण होवेग्या इति. अतो, '**श्रवणं गुरुशास्त्राभ्याम्**' अनेन न्यायेन वेदरूपशास्त्रका समन्वयरूप होनेतें, तथा यथार्थ वक्तृलक्षणपरीक्षाघटमान आप्तरूप व्यासगुरुका बचन होनेतें, श्रवणके अर्थ ब्रह्मसूत्रकी प्रामाण्यता है. केवल वेदसमन्वयके अर्थ नहीं. अरु आग्रहसे ऐसेही माने तो, तिस समन्वयको किसकरी प्रमाणता है ? हमारे तर्कको युक्त होनेतें, ऐसा कहे तौं '**तर्काऽप्रतिष्ठानात्**' इस सूत्रकी अप्रामाण्यता होवेगी. जातें यह सिद्ध भया की सत्यवक्ता जे व्यास, वे वेदका समन्वय अन्यथा नहीं कहेंगे, जा विश्वासकरीही 'प्रिय माता प्रिय पुत्रको विष नहीं देवेगी,' जा विश्वासकेसमान, तिन व्यासकथित श्रुतिसमन्वयघटित उत्तरमीमांसाकी प्रमाणता है. इति. केवल तर्कसजातीयता तौं सांख्यादिकोंमेंभी समान होनेतें, नारदीयसूत्रविरोधग्राहकवादीकी शंका निर्मूल है इति. जभी तिस वेदसमन्वयघटित ब्रह्मसूत्रोंको आप्तश्रीगुरुरूप भगवान व्यासबचनकरिके प्रामाण्य है, तौं पुराणप्रसिद्ध श्रीव्यासके गुरु जे नारदमुनि ते अनाप्त नहीं है. अतो आप्तवचनबलकरके नारदीयसूत्रोंकोभी प्रामाण्यता है. अरु भक्तिश्रुतियोंका समन्वयभी तिस सूत्रोमें शास्त्र-विश्वासारंभाधिकरणसूत्रकरी निरूपण कऱ्या है. तथा,

'तत्संस्थस्याऽमृतत्वोपदेशात्' इत्यादि सूत्रोंकरके शांडिल्याचार्यने भक्तिमीमांसामेंभी भक्तिश्रुतिवाक्योंकी समन्वयघटना कीनी इति. जो वादी कहे की, भक्तिश्रुतिवाक्योंकाही समन्वय होनेतें प्रमाण नहीं. तो वेदांतमेंभी ज्ञानमात्र श्रुतिवाक्योंका समन्वय होनेतें प्रमाण नहीं होवेगा इति. अरु जथार्थमें तो, यह सिद्धांत है की, भक्तिमीमांसामेंभी ज्ञानका आश्रय लिया है. अरु ज्ञानमीमांसामें उपासनावाक्योंकरिके भक्तीका आश्रय लिया है. **'अन्योन्याश्रयमित्यन्ये'** (नारदसूत्र) यह किसी आचार्योंका मत नारदमुनीजीनेभी संग्रहित कऱ्या है, अरु **'स्वयंफलरूपतेति ब्रह्मकुमारः'** (नारदसूत्र) इस सूत्रमें जो 'स्वयं' शब्द है. सो भक्तीकी नित्यताके अर्थ है, ज्ञानकी उपेक्षाके अर्थ नहीं, ज्ञानकी उपेक्षा माने तौं माहात्म्यज्ञानावश्यकतासूत्रतें विरोध होवेगा. इति. माहात्म्यज्ञानका लक्षण भक्तीके षड्गुणलक्षणमें पूर्व कह आई हूं. अतो सर्व विचारयुक्त हेतुतें नारदीयसूत्रोंका विरोध ग्रहण करना अनिष्ट है. जातें योगवासिष्ठवाक्यमें नारदीयसूत्रका अविरोध अवश्य चाहिये.

यह नारदीयसूत्राऽविरोधमंडनरूपनिरूपण किसीको अप्रासंगिक भासेगा. अथापि विशेष विचारवानको इस ग्रंथमें सप्रासंगिक है. क्यौंकी, या मंडनतें भक्तिमीमांसाकी पुष्टि होवे है. अरु भक्ति आविर्भूत होवे है. गुरुशास्त्रद्वारा

भगवद्गुणश्रवणकी मात्र अवश्यकता है. तिस भक्तीमें श्रुत भगवद्गुणादियुक्त भगवंतका ध्यान मनमेंही होवे है. अरु बाह्य मूर्त्यादिकोंकी सेवा बाह्येंद्रिय अर्पण करनेके लिये है. सा भक्तकी मनोमयी मूर्ति आप्तवचननिविष्ट होनेतें परोक्षज्ञानरूपिणी है. जातें भगवद्भक्तोंका ध्यान मनोराज्यमात्र नहीं. क्योंकि, आप्त जैसा देखते हैं, तैसाही कथन करते हैं. सा मूर्ति प्रथम स्वप्नमें यदा आविर्भूत होवे है, तदा प्रत्यभिज्ञारूप होवे है. अरु जागृतमें आयके मैंने अपनी इष्टमूर्ति स्वप्नमें देखी थी, ऐसे स्मरणजनित आनंदतें यदा ध्यान करे है, तदा तद्ध्यान स्मृतिरूप होवे है. स्मृतिरूप होनेतें तिस ध्यानके ज्ञानमें वस्तुतंत्रता है. अरु मधुसूदनोक्त स्थायी भाव, तातें ज्ञेयध्येयकी ऐक्यता बने है. जातें सगुण परमात्माभी वस्तुतंत्र है. जा अभिप्रायकरीही स्वामी मधुसूदनसरस्वतीजीने **'अजोऽपि सन्नव्ययात्मा'** इस गीताके चतुर्थाध्यायोक्त श्लोकके व्याख्यानमें सच्चिदानंद ब्रह्मही मायाकी अपेक्षा नही करिके सगुण ब्रह्मरूप धरे है, ऐसा निरूपण कऱ्या. तहांही सगुणाभिमानियोंका मत जो निर्युक्तिक कह्या है, सो निर्गुणपर श्रुतिविरोध जणावनेके लिये और विष्णुस्वामीमतखंडनके लिये बोल्या. घनविरलावस्थादृष्टांतकरके सगुणनिर्गुणैक्यतानिरूपणमें निर्गुणसगुणपरश्रुतिविरोधका परिहार इस ग्रंथमें पूर्व कऱ्या है. जातें मधुसूदनोक्त निर्युक्तिककथन भेदाऽभेदवादी तथा

भेदवादी जे विष्णुस्वाम्यादिक तिनके मतखंडनपर है. मेरेसा अद्वैतभक्तिवादीखंडनपर नहीं. क्यौंकी, अद्वैतपूर्ण जे जीवन्मुक्त, तिनमें स्वभावसिद्धसेही भक्ति रहे है, इत्यादि गीताटीकोपोद्घातवाक्यकरके मधुसूदनसरस्वतीस्वामी मेरेही अनुकूल है. इति. अरु निर्गुणश्रुतिविरोधभी अनद्वैत-सगुणाभिमानी भक्तिवादीयोंमें बने है. सा अद्वैतसगुणभक्ति-वादियोंमें नहीं इति. मनोमयी मूर्ति एकबार हृदयमें स्थापन करकेही सनत्कुमारादिक इस संसारको निवृत्त करते भये, जा भागवतोक्तिकरी, अरु,--

'यस्य देवे पराभक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।
तस्यैते कथिताः ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥'

(श्वेताश्वतर.)

जा श्रुतिवाक्यकरी ध्यानमें फलतो विलक्षणताभी नहीं. अतो स्वामीविद्यारण्योक्त 'विवरणप्रमेयसंग्रहस्थ' दोष उपासनांतर्गत ध्यानमें आवेगे. भक्त्यंतर्गत ध्यानमें नहीं इति.

१२१ प्रश्नः—स्वप्न प्रतिभासिक होनेतें जागृतमें तदंतर्गत ध्यानकी स्मृति सत्य नहीं होवेगी. जातें ध्यानभी सत्य नहीं होवेगा ?

उत्तरः—जागृतमें पदार्थकी सत्यता क्यौंकरी सत्य होती है ? सो सुन. स्वप्न दिनदिनप्रति नूतन आवते हैतिये. अरु जागृतके पदार्थ पूर्वदिन देखे हुये दुसरे दिन

ध्यानमेंभी है. संतोंके मुखद्वारा श्रुत जो हरिरूप, तिसका कियत दिन जागृतमें ध्यान करिके स्वप्नमें आविर्भाव होवे है. अरु पश्चात् जागृतमें स्वप्नके स्मृतिकरी ध्यान होवे है. पुनः स्वप्नमें आविर्भाव अरु पुनः जागृतीमें स्मृतिकरी ध्यान होनेतें सत्य है इति. अरु ईश्वरदर्शन तथा गुरूपदेश सो स्वप्नांतर्गतभी जागृतमें सत्य होवे है, ऐसा श्रीशंकराचार्यस्वामी 'शतश्लोकीमें' निरूपण करि आये है. अरु देवताविशेषस्वप्नकाभी फल जागृतमें सत्य होवे है, एवं शांकरभाष्यके तृतीयाध्यायके द्वितीयपादमेंभी कह्या है. पश्चात् कियत दिनानंतर ध्येयप्रभुका जागृतमें आविर्भाव प्रत्यक्ष होवे है. इसभांती प्रत्यभिज्ञात्व, स्मृतिरूपत्व, प्रत्यक्षत्व, परोक्षज्ञानवत्व, ध्यानमें होनेतें, सो ध्येयसगुणरूप परमात्मा वस्तुतंत्ररूप सत्य है इति.

१२२ प्रश्नः—तो फिर निर्गुणोपासकोंके मतमें तुम्हारा मत द्वैती होवेगा ?

उत्तरः—निर्गुणोपासक लोक चाहे हमको द्वैती कहे. किंतु ब्रह्मनिष्ठ लोक हमको द्वैती नही कहेंगे. क्यौंकी, अन्वयज्ञानकरी सगुण परमात्मभक्ति अद्वैतमें होती है. अरु, **'तमेव भांतमनुभांति सर्वं'। 'यस्यभासत्सर्वमिदं विभाति'। 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। 'यो वेद निहितं गुहायां सोऽश्नुते सर्वान्कामान्सह'। 'यो मां पश्यति सर्वत्र'। 'समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्ति लभते पराम्' 'सर्वभूतेषु यः पश्येद्भगद्भावमात्मनः।**

भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तम,॥ 'हरिरेव जगज्जगदेव हरिः' । इत्यादि शतशः श्रुतिस्मृति अन्वयज्ञानकीही वरिष्ठता कहतिया है इति.

१२३ प्रश्नः—भक्त्यधिकारीको उपासनाकी आवश्यकता है वा नही ?

उत्तरः—सत्संगतीके पूर्व, कर्मके अनंतर, मध्यकालमें उपासनाकी अवश्यकता भक्त्यधिकारीको भवतु. वरन्, सन्मुखनिर्गत भगवद्गुणश्रवणादरकरी भक्त्युत्पत्तिसमकालिन् वा अनंतर अवश्यकता नहीं. काहे तें, श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य, जा अष्टविधगौणीभक्तीकरी आत्मनिवेदनरूपा पराभक्ति आपही उत्पन्न होवे है इति. इस अष्टविधभक्तीको गौणीपना पराभक्तीके अपेक्षा कहा है. पूर्व जो कह्या, गौणीभक्ति परोक्षज्ञानतें होती है, इसका ऐसा अर्थ नहीं जानना की, गौणीभक्तीमें परमेश्वर प्रत्यक्ष होता नहीं. किंतु इतनाही विशेष है. गौणीभक्तीके जे सख्यादिक प्रकार है, तिनमें परमात्मा प्रत्यक्षभी होवे सो परोक्षध्यानसहित होता है. जैसे की, श्रीकृष्ण ईश्वर है, जा परोक्षज्ञानसहित अर्जुनको श्रीकृष्ण सख्यभक्तीमें प्रत्यक्ष भये थे. अरु पराभक्तीमें परमात्मा अपरोक्षज्ञानसहित प्रत्यक्ष होते है. जैसे की, गीताके अनंतर परमात्मा प्रत्यक्ष व्हयकेभी श्रीकृष्ण अर्जुनको प्रत्यक्ष भये थे. इस

विशेषनिरूपणकरके अवांतर तारतम्य जाणिलेना. सो आत्मनिवेदनभी माधुर्यासक्ति, कांतासक्ति परमविरहासक्ति, वात्सल्यासक्ति, इत्यादिरूपकरिके अनेकरूपा है.

१२४ प्रश्न:–आत्मनिवेदनमें तो केवल अपनी प्रीतिही होवेगी. फेरी व्यापकसगुणपरमेश्वरप्रीतीकी आवश्यकता क्या है ? अरु अपने अर्थ देवकी प्रीति है, इत्थं श्रुतिभी कहती है.

'न वा अरे देवानां कामाय देवाः प्रिया भवन्त्यात्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवन्ति' । (बृहदारण्यक.)

उत्तर:–'केवल अपनीही प्रीति होवेगी' इस बचनकरी तेरे मनमें अन्वयज्ञानरूप व्यापक आत्मप्रीति विवक्षित है ? वा देहावच्छिन्न आत्मप्रीति विवक्षित है ? तहां प्रथम पक्ष माने तो सगुणपरमात्मप्रीतिरूप भक्ति संभवती है, यह पूर्व कह्या. क्यौंकी व्यापक आत्मप्रीतीका अरु सगुणव्यापकपरमात्मप्रीतीका अन्वयज्ञानकरी भेद है नहीं. अरु द्वितीय पक्ष मानेगी तो भगवद्भक्तोंकी अरु अज्ञानी जनोंकी तुल्यता होवेगी. जातें, तेरे प्रश्नका स्वीकार करना अयोग्य है. श्रुतीमें जो अपने अर्थ देवकी प्रीति कही, सा भगवद्भक्तमानिन् नानादेववादियोंके अनिष्टापादानके अर्थ हे. **'आत्मनस्तु कामाय देवाः प्रिया भवंति'** यह जो श्रुतीमें अनेकबचनता करी, अयं ही स्पष्टार्थ जानना.

विद्यारण्य स्वामीजीनें 'पंचदशीमें' आत्मप्रीतीका अरु भक्तीका जो भेद कह्या, सो इस श्रुत्यनुकूल है इति.

१२५ प्रश्नः—आत्मनिवेदनका मेरे हृदयकरी ग्रहण होवे, तथा संकलित निर्देश करिके कहिये.

उत्तरः—आत्मनिवेदनरूप जो भगवच्छरणत्व है, तन्मधुसूदनीमें त्रिविध कह्या.

'तस्यैवाहं ममैवासो स एवाहमिति त्रिधा ।
भगवच्छरणत्वं स्यात्साधनाभ्यासपाकतः ॥'

अर्थः—'मै परमात्माका हूं,' 'मेरा परमात्मा है,' 'परमात्माही मै हूं,' जा प्रकार त्रिविध आत्मनिवेदन है. तहां प्रऱ्हादकी भक्ति '**तस्यैवाहं**' इस रीतीकी है. क्यौंकी, नारायणका मै पुत्र हूं, और परमात्मा मेरा पिता है, जाप्रकार आत्मार्पणभक्ति कीनी थी. जातें नारायणने प्रऱ्हादको पुत्रवत् अपने अंकोंपर लेके रक्षण कीना. अरु नंदयशोदाकी भक्ति 'मेरा परमात्मा है' जा रीतीकी थी. अतो, ब्रह्मादिकोंने स्तुतियोग्य परमात्माको अपने अंकपर लेकरही स्तनपानाद्युपचार कीने. दवानलादि स्थानोमें जो श्रीकृष्णकी प्रार्थना कीनी थी, सो पितृवत् जानिके कीनी थी. प्रेमका विषय एकही होनेतें व्यभिचार नहीं भया. 'एकही पुरुषको पिता अरु पति कहनेतें पितृगमनादिदोष जैसा स्त्रीको होवे है, तैसा पुत्रत्व, पितृत्व माननेमेंभी व्यभिचार संभवे है' यह कोई वादी

कहे तो समीचीन नहीं. क्यौंकी, पति और पिता यह जीवोमें व्यक्तिद्वय होनेतें व्यभिचार है. और ईश्वरमें पुत्रत्व तथा पितृत्वादिक एकव्यक्तिस्थानीय होनेतें व्यभिचारी नहीं. अरु जीवोंका शरीर कर्माधीन होनेतें, विधिनिषेधके बलकरी पिताको अन्यशरीररूप पतित्वादिकोंका आकार धारण करनेके सामर्थ्यके अभावकरी एक पुरुषमें दो संबंध माननेतें स्त्रीको दोष संभवे है. अने, ईश्वरका शरीर कर्माधीन नहीं होनेतें विधिनिषेधके अभावकरिके जैसा कोई भक्त भावना करे है, अथवा प्रणिघान करे है, तैसा संबंध भगवंतमें संभवे है; यातें व्यभिचार नहीं. **'ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यमहम्'** यह भगवाननेही कह्या है. ईश्वरप्रत्यक्षके पूर्व गौणीभक्तीमें भावनामय ध्यान होवे है. अरु ईश्वरप्रत्यक्षके पश्चात् गौणीभक्तीमें भावना-दाढर्यकरी ध्यान होवे है. अरु पराभक्तीमें प्रणिधानमय ध्यान होवे है. एतत् अग्रे स्पष्ट होवेगा. **'स एवाहम्'** जा रीतीकी तृतीय उत्तम भक्ति व्रजगोपिकाओंको प्राप्त भयी. रासमंडलमें प्रभु गौप्य होनेपर स्वयं श्रीकृष्णादि बनके लीला करनेका अधिकार आया, जातें प्रत्यक्ष है इति. एतत् समस्त निरूपण मधुसूदनीके अठराहवे अध्यायमें कीना, तत् द्रष्टव्यम्.

१२६ प्रश्नः–ध्यान करनेतें प्रथम स्वप्नमेंही क्यौंकरी आविर्भाव होता है ?

उत्तरः–योगवासिष्ठमें भावनाके तीन संवेग कहे है. मृदु, मध्य अरु तीव्र. पदार्थकेउपर मन लगानेका नाम मृदु संवेग है. पदार्थकेउपर मन लगनेका नाम मध्य संवेग है. अरु पदार्थाकार मन होनेका नाम तीव्र संवेग है. जब मृदु संवेग रहता है, तब निद्राके समय स्मृति नहीं रहनेतें स्वप्नमें अविर्भाव होता नहीं. अरु मध्य संवेगतें निद्राके समय ख्याल होनेतें स्वप्नमें शीघ्र आविर्भाव होता है. तीव्र संवेगतें तदाकार होनेतें जागृतमें प्रत्यक्ष होता है. तीव्रतर होनेतें ध्यातृध्येयकी एकता होती है. तहांभी अनिर्वचनीय प्रेम बन्या रहता है. सो अनुभवबिना शब्दका विषय नहीं. किन्तु भावनामें पदार्थ परमात्माबिना अन्य न हो, यह दृढ स्मृति हितकर है. '**तीव्रसंवेगानामासन्नः समाधिलाभः**'। '**अनिर्वचनीयं प्रेमस्वरूपम्**' यह पतंजली अरु नारदके सूत्र है. ध्यातृध्येयैकताका नाम समाधि है. अन्य अक्षरार्थ स्पष्ट है इति. सो समाधि भक्तीतें बने है. जा प्रकारका घेरंडसंहितामें निरूपण कन्या. तत्स्थ प्रमाणश्लोकः–

'स्वकीये हृदये ध्यायेदिष्टदेवस्य रूपकम् ।
चिंतयेद्भक्तियोगेन परमाल्हादपूर्वकम् ॥
आनंदाश्रुपुलकेन दशाभावः प्रजायते ।
समाधिः संभवेत्तेन संभवेच्च मनोन्मनी ॥

अपने अल्प हृदयको व्यापक करनेके अर्थ '**स्वकीये हृदये**' ऐसा पद कह्या. प्रेमके अर्थ '**इष्टदेवस्यरूपकम्**' यह पद कह्या. अन्वयज्ञानतें आत्मानंदैक्यताके अर्थ '**परमाल्हाद**' यह पद कह्या. अनिर्वचनीय प्रेमके अर्थ '**भक्तियोगेन चिंतयेत्**' यह पद कह्या. '**समाधि**' पदका अर्थ पूर्व कर आई हूं. '**च**' कार समस्त पूर्वपक्षके निवृत्त्यर्थ है. '**संभवेत्**' पद उत्तमपदप्राप्तीके अर्थ है. '**मनोन्मनी**' पद विदेहमुक्तिके अर्थ है. '**संभवेत्**' इस पदकी द्विवार आवृत्ति अन्ययोगव्यावृत्तिपूर्वक भक्तिदृढीकरणार्थ है. यह श्लोकोंका भावार्थ है. सरलार्थ स्पष्ट होनेतें कऱ्या नही इति.

१२७ **प्रश्न**:–और किसी प्रकार भावनातें मन पदार्थाकार होवे है वा नहीं ?

उत्तर:–हां होता है.

'यत्र यत्र मनो देही धारयेत्सकलं धिया ।
स्नेहाद् द्वेषाद्भयाद्वापि याति तत्तत्स्वरूपताम् ॥'

(श्रीमद्भागवत.)

अर्थ:–स्पष्ट. देही=जीव. सकलं=वृत्तिमात्र. धिया= निश्चयकरी. 'अन्यविषय त्यागके' यहभी सकल पदका अर्थ है. अन्य अक्षरार्थ स्पष्ट.

१२८ **प्रश्न**:–तो फिर क्रोधादिविकार करकेभी परमेश्वरमें मन लगाना ! प्रेमतें परमेश्वरमें मन लगानेका प्रयोजन नहीं.

उत्तरः–यथा, अपना मुख दर्पणमें दिखता है, तथा मूत्रमेंभी दिखता है. परंतु मूत्रमें रूप देखनेसे नेत्रोंको तो दिखता है. परंतु नासिकाको दुर्गंधतें पीडा होती है. अरु मूत्रमें मल होनेतें मुखभी स्पष्ट दिखता नहीं. और सोभी चंचलताते अपने मुखतें विरुद्धही दिखता है. अयं दोषसमुदाय दर्पणमें नहीं. अणे मुख स्थिरपूर्वक स्पष्ट दिसे है. तद्वत् दार्ष्टांतमें भक्तिबिना क्रोधादिविकारोंसे परमात्माकार मन करनेमें अभिमानरूप दुर्गंधतें आनंदाविर्भाव होता नहीं. जातें हृदयको दुःख प्रतीत होता है. अभिमान मलका बीज होनेतें परमात्माका ध्यानभी स्पष्ट होता नहीं. अरु प्रेमबिना मनका कर्षक कोई नहीं होनेतें तथा पौरुष्यकी दुर्बलता होनेतें क्षणक्षण व्युत्थान होता है. जातें ध्यानमें परमात्मसाक्षात्कारके बारेमें कोई अन्य सिद्धि तथा देवताकाही साक्षात्कार होनेका संभव है. निर्गुणोपासकोंको एते कष्ट भगवानने कहे है. परंतु निर्गुणोपासक यदि क्रोधादिविकाररहित हुवा, तो मेरी प्राप्तिभी तिसको कष्टतें होती है, यहभी प्रभुने कह्या. अतो सगुणपरमात्मभक्तिही वरिष्ठ है. तामेंही मन लगाना.

१२९ प्रश्नः–निर्गुणोपासना श्रुतीमें किमर्थ कही ?

उत्तरः–जिसको घनाकर सूर्य अभ्रसे आच्छादित दिखता है, तिसने किंचित् प्रकाशसेही दिनका अनुमान करना. तथा सगुणपरमात्माकेउपर मनुष्यत्वारोप करिकै

तिसके लीलानंदमें जिसको दोष दिखते है, तिस पुरुषने व्यतिरेक करके विरलावस्थारूप निराकार चैतन्यके अनुमितिप्रमासे आनंदरूप परमात्मा है, ऐसा जानिके मोक्षके अर्थ मुमुक्षा रक्षण करना. एवं 'उपवासाद्वरं भिक्षा' इति न्यायते श्रुतीमें निर्गुणोपासना कही. परंतु प्रेमपूर्वक सगुणभक्तिही वरिष्ठ है. परमात्माकेउपर क्रोधादिकोंकी करणीयता जो नारदसूत्रमे कही है, सा गौणीभक्तोंको अन्यविषयानवकाशके अर्थ, अरु पराभक्तको तो प्रणयपूर्वक कुतुहलताके अर्थ कही.

१३० **प्रश्न**:–परमात्माको हृदयमें स्थापन कर किस रीतीसे भक्तीका रक्षण करना, सो कहो.

उत्तर:–चित्तद्रव्यकी विषयोंकेउपर कठिनता कर सगुण परमात्माकेउपर द्रवता करनेसे हृदयमें परमात्माका स्थापन तथा भक्तीका रक्षण होई सके है.

१३१ **प्रश्न**:–एतदीय प्रक्रिया कृपा करिके संपूर्ण निरूपण करिये.

उत्तर:–श्रवण कर. इदं चित्त, बुद्धि तथा मन रूप करिके द्विविध होवे है. तहां मन तो पदार्थका संकल्प मात्र करे है. अरु बुद्धि निश्चय करे है. तहां 'मै हुं' जा-प्रकारके निश्चयका नाम 'अहंता' है. अरु 'यह है' जाप्रकारके निश्चयका नाम 'इदंता' है. या स्थानमें एतद्रहस्य है. जभी किसी पदार्थका निश्चय होता है, तिसमें अज्ञानांश

और ज्ञानांश, दोनोभी रहते है. जैसे, 'अयं घट है' इस निश्चयमें घटज्ञान और घटाकार वृत्ति यह दो अंश रहे है. तहां घटज्ञान तो घटाकारवृत्त्यंशको जाने है, किंतु घटाकारवृत्त्यंश घटज्ञानको जाने नहीं. जातें सो घटाकार-वृत्त्यंश जड, और घटज्ञान चेतन, जाप्रकार व्यवहार होवे है. एतन्नामही 'बुद्धयवच्छिन्नचित्' ऐसा वेदान्तके सिद्धांतमें 'अवच्छेदवादियों' का मत है. अरु सुषुप्तिस्थानमें, ता बुद्धिवृत्तीका लय होवे है. जातें सो चिदवच्छेद ता बुद्धिवृत्तीकी लीनांशको जानिके, जागृतमें 'मै कुछ जानता नहीं था' जा प्रकारका अपना अनुभव प्रगट करे है. इसतें, कोईक वेदांती ता बुद्धयवछिन्न चेतनको मात्र अंगिकार करते नहीं. किंतु पूर्वकथित जो कार्यानुमेय अज्ञान, तिसमें प्रतिबिंबदृष्टांतसाधित उपरक्ततारूपचेतन आभास मात्र अंगिकार करे है. ता आभासकोही आभासवादी जीव माने है. अरु अवच्छेदवादी अवच्छिन्नमात्र चेतनकोही जीव माने है. किंतु श्रीज्ञानेश्वरजा मतमें दोनो वादकी इस भांति ऐक्यता होवे है. अवच्छेद तथा आभास, एतत् द्वय औपाधिक मात्र कल्पना होनेतें, ब्रह्मदृष्टीसे जीव आभास अरु उपाधिदृष्टीसे जीव अवच्छिन्न होवे है. जैसे :— कश्यपजप्रतिबिंब कश्यपजदृष्टीकरी मिथ्यारूप आभास तथा घटस्थजलदृष्टिकरके जलावच्छिन्न अवच्छेद जाविध रहे है. तथा अयं जीवभी शुद्धचेतनकरके मिथ्यारूप आभास,

अरु बुद्ध्युपाधि करके अवच्छेद, एवंविध प्रतीत होवे है. इस प्रक्रियाका स्पष्टिकरण प्रतिबिंबदृष्टांतसे अधिक होनेतें श्रीमच्छंकराचार्य तथा विद्यारण्यादिकोनें प्रतिबिंवादकाही ग्रहण कीना. अरु बिंबके व्यापक दृष्टीसे प्रतिबिंब व्याप्य होवे है. जाप्रकार अंशवादव्यवस्थाभी अस्मिन्नेव संभवति. एतत् वादत्रय औपाधिक है.

'अंशावच्छेद आभास इत्यौपाधिककल्पनैः ।
जीवेशयोर्व्यवस्था स्याज्जीवानां च परस्परम् ॥'

इत्थं 'वैय्यासिकी न्यायमालामें' भारतीतीर्थने कह्या है. इस श्लोकका यह अर्थ है. जीवेश्वरकी तथा जीवोंकी परस्पर व्यवथा है वा संकर है ? जा संशयके प्राप्त भये भेदाभेदविषयक श्रुतिद्वय होनेतें, जीवेश्वर तथा जीवोंका संकर हैं, जाविध पूर्वपक्षी कहे, तहां यह सिद्धांतका श्लोक है. अंश, अवच्छेद अरु आभास, जाप्रकारकी औपाधिक कल्पना बुद्धिमानोंने करी है. ताकरके जीवेश्वरकी तथा जीवोंकी व्यवस्था संभवे है. संकर नहीं इति. पृथक् होनेपर स्पष्टनिश्चितका नाम व्यवस्थिति है. अरु मिश्र होनेपर अस्पष्टनिश्चितका नाम संकर है. इति. सा उपाधि पूर्व कही, 'अर्थापत्तिरूप' अनिर्वचनीय है. तिसमें जो अनुभवकरके चेतनका पूर्ववादानुसार प्रतिबिंब होवे है, सो जीव है. अरु बिंबभाग ईश्वर है. काहेतें, बिंबत्व प्रतिबिंबानुमेय होनेतें आरोपित है; अरु स्वरूपसे शुद्ध है. प्रतिबिंबकेसमान सकलंक

अरु बद्ध नहीं. तिस बिंबभागमें प्रतिबिंबानुमेयताकरके आरोपितत्व, अरू स्वरूपकरके निष्कलंकत्व, सिद्ध होनेतें सो बिंबभूत परमात्मा विद्यारूप है. परतः आरोपितत्व होनेपरभी स्वरूपतो निष्कलंकत्व होनेतें, तिस परमात्मामें स्वरूपका प्रमाद संभवे नहीं. याकाही नाम विद्या है. अरु प्रतिबिंबरूप जीवमें, आरोपितपना तथा सकलंकपना यह दोनोभी औपाधिक होनेतें परतंत्रताधिक्य करके स्वरूपप्रमाद संभवे है. जातें तिस प्रतिबिंबरूप जीवकी उपाधीका नाम अविद्या है. "मैं निष्कलंक हूं, आरोप मिथ्या है" जाप्रकारके ज्ञानके निश्चयका नाम अप्रमाद, अरु विपरीत ज्ञानका नाम प्रमाद है. यहां 'मैं' शब्द मुक्तके अनुभवमेंसे लेकरी मुक्त-मुखद्वाराही विद्यामें कहा है. सो बालबुद्धीको जणावने अर्थ है. अरु अविद्यामें 'मैंपना' स्पष्ट संभवे है इति तहां सो 'मैंपना' विद्यामें भर्जित बीजके समान अबंधकारक है. अरु अविद्यामें अंकुरशक्त बीजकेसमान बंधकारक है. सो अविद्याका 'मैंपना' प्रमादरूप होनेसे उपाधिरूप अनात्मामें होवे है. अरु विद्याकृत 'मैंपना' अप्रमादरूप होनेते आत्मामें होवे है, इति. इसकोही अहंता कहे है. इस अहंतामें इदंतासे चेतनके अधिक तादात्म्य होनेतें बाह्य पदार्थसे किंचित् स्थिर भासे है. अरु विद्याका अहंत्व परम स्थिर होनेतें सत्य कहावे है. एषा उपाधिही विद्याकरी परमेश्वरका अरु अविद्याकरी जीवका शरीर होवे है. सा उपाधि आत्मसत्ताकरके सत्य

प्रतीत होवे है. अरु स्वरूपसे भक्ति ज्ञाननाश्य होनेतें मिथ्या है. जा प्रकार यद्यपि है, तथापि विद्यामें ज्ञान स्वयं होनेतें नाश्यता संभवे नहीं. अरु अविद्यामें तथा न होनेतें संभवे है. इसतेंभी परमात्माकी स्वशरीरसत्यता प्रतीत होवे है. बिंबभाव यथा प्रतिबिंबानुमेयताकरके आरोपित है, तथा विद्यात्वभी अविद्याकी अपेक्षा आरोपित है. ता आरोपित-पनासे संकल्पभी संभवे है, किंतु स्वरूपतें निष्कलंकता होनेतें बद्धता नहीं; स्वतंत्रता है. जाते सो ईश्वरसंकल्प जीवसंकल्पसे अधिक स्थिर होनेतें सत्य कहावे है इति. तिस संकल्पका फलभी जीवको है, ईश्वरको नहीं. काहेतें, जीव उपाधिकरके आरोपित होनेतें, जीव जभी अन्य पदार्थका संकल्प करे है, तदा अपनी न्यूनतानुभूतितें किसी पूर्ण परमेश्वरमें दातृत्वा-रोप करे है. जातें, सो किया हुवा आरोपही ईशसंकल्प व्हयके जीवको संकल्परूप पदार्थोंकी प्राप्ति करे है. और जभी अयं जीव तिस ईश्वरकाही संकल्प करे है, तदा विद्याके बलतें अविद्याका नाश होनेपर ईश्वरही व्हव जावे है. तथापि स्वाभाविक आत्मानंदानिर्वचनीयप्रीतिरूप भक्ति संभवे है. जा अभिप्रायतेंही योगवासिष्ठमें ईश्वरको जीव कह्या. अन्यथा, अनीश्वरवादरूप नास्तिकतादोषसंभव होवेगा. इयं उपाधि सुषुप्तीमें कारणरूपताकरके अरु जागृत्स्वप्नेमें कार्यरूपताकरके बीजरोहप्रवाहकीनाई स्थित रहे है. तहां कारणरूपतामें परमात्मासे जीवका अधिक

मिलाप होनेतें ईश्वरको श्रुतीनें कारणोपाधि कह्या. अरु कार्यावस्थामें जीवका अनात्ममें अधिक तादात्म्य होनेंतें तिसको कार्योपाधि कह्या. '**कार्योपाधिरयं जीवः कारणोपाधिरीश्वरः**' एषा तहां श्रुति है. इयमुपाधिही चित्तसंज्ञक है. स्फुरण, मन, चित्त, बुद्धि, संकल्प इन शब्दोंका उपाधीके स्वरूपसे तो एकही अर्थ है. अरु कार्यसे, बुद्धिशब्दका अर्थ निश्चय, मनका अर्थ संकल्प, इत्यादिरूप भिन्नार्थ है इति. सो भिन्नार्थ कार्यावस्थामेंही बने है, कारणावस्थामें नहीं. जातें कार्यदृष्टीकरके सुषुप्तीमें बुद्धि, मन, आदीकी लीन दशा कही है. अरु विषयाभावप्रत्यंयावलंबनरूप करिके तहां बुद्धिवृत्ति है. जाप्रकार योगशास्त्रमें कह्या है. तहां सूत्रः— '**अभावप्रत्ययावलंबनावृत्तिर्निद्रा**' (पातंजलयोगदर्शन.) वेदांतियोंने सुषुप्तीमें जो अभावप्रत्ययका खंडन कऱ्या, सो नैय्यायिकोंके विशेषणताज्ञानरूप अभावप्रत्ययका खंडनपर तथा अनुपलब्धिप्रमाणसिद्धिपर जाणिलेना. सो बोध स्वप्नसम विषयतें भिन्न है, ज्ञानतें भिन्न नहीं. जाप्रकारका सुषुप्ति अवस्थाका निरूपण पंचदशीके 'तत्वदीपमें' कऱ्या है तस्य विस्तर अच्युतरायजीके कौमुदीमें द्रष्टव्यः ।

सा सुषुप्तिस्थ वृत्ति जभी संकल्पसे देशकालवस्तुरूपपदार्थकलनास्थितीमें किंचत् स्पंदरूप होवे है, तदा अंतवाहक अरु दृढरूप होनेपर आधिभौतिक होवे है इति. तिस

आधिभौतिकमें जे पदार्थ अधिक काल स्थिर रहे है, तिस अवस्थाका नाम जागृत है. अरु जे पदार्थ किंचित् काल स्थिर रहे है, तिस अवस्थाका नाम स्वप्न हैं. स्वप्न यदि अधिक काल स्थिर होवे, तो वहही जागृत अवस्था व्हय जावे, याप्रकारका निरूपण योगवासिष्ठमें कऱ्या हैं. जातें सब जगत् स्वप्नही है. जागृति केवल ब्रह्मज्ञानसहित भक्ति है इति. अरु उपाधीके आधिभौतिक कार्यावस्थामें जो जागृत्स्वप्नका भेद कह्या, सो पंचदशीके अनुसार बालबुद्धीको जणावणेके अर्थ जाणिलेना. तहां सो अंतवाहकरूप उपाधि जो आधिभौतिक होवे है, सो सब होवे नहीं, किन्तु किंचित् होवे है. सो आधिभौतिक देह, इंद्रियें, विषय करिके अनेक प्रकारके है, जाविध अनुभव है. याप्रकार किंचित् अंतवाहकका योन्यादिसामग्रीसे आधिभौतिक होना जन्म है. अरु व्याध्यादिसामग्रीसें आधिभौतिकका अंतवाहक होना मरण है. इस आधिभौतिक अवस्थामें जे ते पदार्थ होते है, तिन सब पदार्थोमें जितना उपाधीका अंतवाहक अंश रहै है, तितना अंतःकरण होवे है. अरु जितना उपाधीका भौतिक अंश रहे है, तितना देहादि होवे है. तहां सो अंतःकरण अंशभी पाषाणवृक्षाद्यवस्थामें आधिभौतिकको कठिनतासे मूर्च्छारूप होय रहे है. अरु पशुपक्षाद्यवस्थामें आहारनिद्राभयमैथुनमात्रज्ञानतें अविचारीबुद्धिरूप होवे है.

अरु मनुष्यदेहाद्यवस्थामें विचारीबुद्धिरूप होवे है. अरु हिरण्यगर्भाद्यवस्थामें केवल अंतवाहकही होनेतें महाज्ञानरूप है इति.

इस आधिभौतिक कार्यावस्थामें जितनी शरीरसे चेष्टा होवे है ताका नाम कर्म है. अरु जितनी मनसे चेष्टा होवे है ताका नाम वासना है. वासना जैसी जैसी आधिभौतिक अवस्थाके तरफ बाह्य स्थिति दृढ होवे है, तैसी तैसी कर्मरूप होवे है. अरु जैसी जैसी ईश्वरके तरफ् अंत:स्थिति दृढ होवे है, तैसी तैसी विद्यारूप होवे है. अरु वासना जभी ता विद्यारूप परिणामको प्राप्त होवे है, तभी जीव ईश्वर व्हय जावे है. ता कर्मनिश्चयरूप वासनामें शुभाशुभता है; विद्यानिश्चयरूप वासनामें नहीं. जातें कर्मका फल सुखदु:ख प्राप्त होवे है. अरू विद्याका फल केवल सुखही होवे है. तहां शुभकर्मका फल, जो सर्वदा इच्छितविषयसमाधानरूप होता है, सोही स्वर्ग है. अरु शुभाशुभमिश्र कर्मका फल चिन्तासमाधानरूप मर्त्यलोककी प्राप्ती है. अरु अशुभ कर्मका फल, जो चिताधिक्य तथा न्यूनसमाधान, सो नरकभोग है. वृक्षपाषाणाद्यवस्थामें चिताधिक्य तथा न्यूनसमाधान होनेतें सो नरकरूपही है. अरु देवाद्यवस्थामें समाधान अधिक होनेतें, विचार अधिक स्फुरे है. भोगदशामें देव तथा मनुष्योंका भेद है. विचारदशामें दोनों समान है. जातें विद्यारूप वासनाका

अधिकार मनुष्य तथा देवोंकोभी है. किन्तु इतना भेद है. मनुष्यावस्थामें तो निष्काम कर्म करिके वैराग्यके पश्चात् मुमुक्षा संभवे है अरु देवोंको केवल विषयदोषदृष्टीसे मात्र एकदम वैराग्यसे मुमुक्षा संभवे है.

अखंडानंदका नाम मोक्ष है. तिसकी इच्छाका नाम मुमुक्षा है. अखंडानंद सो ब्रह्मका है. सो अंत:करणके चंचलतासे जीवको तिरोहित है. जब अन्त:करण एकाग्र होता है, तब आविर्भूत होता है. विषयके संबंधमें जब अन्त:करण एकाग्र होता है तब विषयानंद उद्भूत होता है. तिस आनंदकेऊपर जो प्रीति है तिसका नाम राग है. सुषुप्तीमें जीवपरमात्माका तादात्म्य होनेसे सब विषयोंसे अधिक आनंद उपजता है. क्यौंकि, तहा अंत:करण अत्यंत एकाग्र होता है. अरु समाधिअवस्थामें विद्यारूपता करिके ईश्वरसे एकता होनेतें, परमानंद होता है. तिस परमानंदऊपर जो प्रीति तिसका नाम भक्ति है.

एवं आनंदके अभिव्यक्तीका नामही रस है. सो रस अंत:करणके एकाग्रताके आधीन है. अरु तिस रसके अभिव्यक्ति करनेहारी विभावानुभावव्यभिचारीभावादि सामग्री है. तिस विभावानुभावव्यभिचारीभावसे अंत:करण एकाग्र होवे है. तदा जिस पदार्थकेऊपर एकाग्रता होवे है, तिस पदार्थके आश्रय तथा अंत:करणाश्रयरूप चेतनकी

एकता व्हयके आनंदभी उपजे है. अरु केइक पदार्थ देखकर जो दुःख उपजे है, सो अर्ध एकाग्रतामें उपजे है इति. अथवा दुःखका भान होनेकी दुसरीभी रीति है. जिस पदार्थको देखके सुख उपजे है तत्सुख पदार्थोपहित चैतन्यतें चित्तैकाग्र्यद्वारा उपजे है, जा सिद्धांतको नहीं जानता हुवा चिदाभास, तिन पदार्थनतेंही सुख उपजे है, जाप्रकार मानिके, तिन पदार्थनकी और एवं दृष्टि करे है की, या पदार्थनतेही मै सुखी हूं. एते पदार्थही सुखरूप है. एते पदार्थही मेरे निकट सदा रहे. जाप्रकार दृष्टीका आश्रय करके, तिन पदार्थनके अप्राप्तिकरणहेतु जे अन्य पदार्थ, तिनके विषे द्वेषवृत्तीका आश्रय लेवे है. अरु जिन प्राप्त पदार्थनतें सुख उपजे है, तिनकेऊपर प्रीति राखे है. कदाचित् सो सुखहेतु प्राप्त पदार्थ किसी कारणतें अप्राप्त भया, तो पश्चात् तिसकी इच्छा करे है. जा इच्छाकाही नाम काम है. अरु जे प्रिय पदार्थके अप्राप्तिकरणहेतु अन्य पदार्थ, तिन विषे द्वेष राखिके प्रतिकारकी इच्छा करे है, ता इच्छाका नाम क्रोध है. अरु जो प्राप्त पदार्थ है, तिनके रक्षणकी इच्छाका नाम लोभ है. काम, क्रोध, लोभ इन तीनोंकोही भगवानने नरकका द्वार कह्या. तात्पर्य, इन तीनोंतेही दुःखका भान होवे है. तथापि तहां यह रहस्य है. यद्यपि एते समस्त पदार्थ स्वोपहित चैतन्यता करके चित्तैकाग्रचद्वारा आनंददायक है, तथापि या प्रकारको

न जाणिके केवल पदार्थनतें सुख उपजे है, या विपरीत ज्ञानतेंही दु:खकी प्राप्ति जीवको होवे है. तहां समाधीमें आत्माकारवृत्तिरूप योग जा विधीते दु:खका निवर्तक होवे है, तैसे व्युत्थानदशामें सो 'रसानंद' समाधि दु:खनिवर्तक होवे है. या रसानंद समाधिका वर्णन घेरंड संहितामें करेला है; तहांते जाणिलेना. परंच रस केवल व्युत्थानदशामें सुखकू उपजावे है. तथापि अनित्य वस्तुओके संस्कारतें बण्या स्थायीभाव ज्ञानके पश्चात् तुच्छताको प्राप्त होवे है. और भगवत्प्रेमवशतें भया हुवा भगवदभिव्यक्ति संस्काररूप स्थायीभाव नित्य होणेतें तदुत्थ भक्तिरस व्युत्थान तथा समाधीमें भी सुखदायी है. जातेंही आत्मामें रमण करणेहारे जे मुनि है तेभी भगवद्गुणगानमें निरत होवे है. याका यह भाव है; शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसी, सत्वापत्ति, असंसक्ति, पदार्थाभावनी अरु तूर्यगा इन् वसिष्ठोक्त सप्त ज्ञानभूमिकाओंमें प्रथम शुभेच्छादि तीन साधनभूमिका होनेतैं, चौथी भूमिकाही ज्ञाननिष्ठारूप कही है. सा चतुर्थी भूमिकाही **"आत्मारामा"** या श्लोकके पदतें कथन करेली है. तहां यह रहस्य है.

तत्वज्ञानके अनंतर मनोनाश अरु वासनाक्षयतें अग्रिम असंसक्ति आदिक भूमिका साधिके जीवन्मुक्तिलाभ विद्यारण्यादिकोंनें कह्या है. तदपि सो अग्रिम असंसक्त्यादि भूमि साधिके जीवन्मुक्तिही **"मुनय"** यह पद श्लोकमें

धन्या है. तहां सत्वापत्ति भूमिकावालेकूं 'आत्माराम' कहे है. "मैं ब्रह्म हूं" इस निश्चयका नाम सत्वापत्ति है. असंसक्ति भूमिकारूढ पुरुषकूं 'मुनि' कहे है. और पदार्थाभावनी भूमिकारूढ पुरुषनकूं 'निर्ग्रंथ' कहे है. किंवा असंसक्ति और पदार्थाभावनी इन दूनो भूमिओंका ग्रहण "मुनि" पदतें किये. तूर्यगा नाम सप्तम भूमिकाग्रहण "निर्ग्रंथ" पदतें किये, प्रथम अर्थमें सप्तम भूमि भक्तिरूप होवे है और द्वितीय अर्थमें तिन सारे भूमियोंका लाभ भक्तितेंही होवे है. जावध अभिप्राय निकसे है. हे सखी ! एवं 'आत्मारामाश्च मुनयः' इस श्लोकका अर्थ करणेतैं अग्रिम उदाहृत श्लोकोंकाभी अर्थ तुणें यथाकथंचित् जाणिलेना. तेरे तर्कपूर्वक किये प्रश्नके उत्तरकी इसही श्लोकमें समाप्ति हुई.

सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् ।
सामुद्रो हि तरंगः क्वचन समुद्रो न तारंगः ॥
ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न कांक्षति ।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्ति लभते पराम् ॥
मेघैर्मेदुरमंबरं वनभुवः श्यामास्तमालद्रुमैः ।
नक्तं भीरुरयं त्वमेव तदिमं राधे गृहं प्रापय ॥
इत्थं नंदनिदेशतश्चलितयोः प्रत्यध्वकुंजद्रुमम् ।
राधामाधवयोर्जयंति यमुनाकूले रहःकेलयः ॥

वंदे नंदव्रजस्त्रीणां पादरेणुमभीक्ष्णशः।
यासां हरिकथोद्गीतं पुनाति भुवनत्रयम् ॥

इत्येवं वदंति जनजल्पनिर्भया एकमताः कुमारव्यास-शुकशांडिल्यगर्गविष्णुकौंडिन्यशेषोद्धवारुणिबलिहनुमद्विभीषणादयो भक्त्याचार्याः (नारदभक्तिसूत्र)

प्रऱ्हादनारदपराशरपुंडरीक-
व्यासांबरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान् ॥
रुक्मांगदार्जुनवसिष्ठबिभीषणादीन्
पुण्यनिमान्परमभागवतान्स्मरामि ॥

ॐ नमः श्रीआदिनाथाय नमो मत्स्येंद्ररूपिणे ॥
गोरक्षप्रभवे गहिनीनाथायाथ निवृत्तये ॥ १ ॥

परं ब्रह्म परं धाम सच्चिदानंदविग्रहम् ॥
ज्ञानेश्वरमितिख्यातं प्रणमामि गुरुं हरिम् ॥ २ ॥

इस सब सज्जनोंकू मेरा साष्टांग प्रणिपात है. और तुभी प्रणिपात कर. और मैं लोटांगण करिके तिन संतनको मैं अपना मत यथा है तथा प्रदर्शित करती हूं.

दोहाः—नहि चाहति हूं पक्वता नही मोक्षकी आस।
तुह्मरि कृपा हरिपदक्षालनकारण रहुंगी पास ॥ १ ॥

ज्ञानेश्वरगुरुचरणपर किया समर्पण काव्य ।
कन्याबाणी कथमपि सतां भवतु सुश्राव्य ॥ २ ॥

अपरिमित युक्ति कह्या हरिभक्तीको पंथ ।
श्रीज्ञानेश्वरचरणपर अर्पण किया सो ग्रंथ ॥ ३ ॥

हरिः ॐ तत्सत् । श्रीमत्सद्गुरुज्ञानेश्वरकृपाप्रसादेन गद्यपदयुतः आर्यभाषायां यथाबुध्द्या विरचितः स्वमंतव्यांश-सिद्धांततुषारः श्रीमत् सद्गुरुज्ञानेश्वरपादयोः समर्पितः ॥

समाप्त

वैदर्भीय संतश्रेष्ठ श्रीगुलाबराव महाराज विरचित

ग्रंथोंकी सूची

अ. नं.		ग्रंथोंका नाम	किमत
१	भक्तिपदतीर्थामृत (अनुवादसहित)		१=५०
२	सूक्तिरत्नावली-द्वितीययष्टि-पूर्वार्ध		२=००
३	,,	-तृतीययष्टि- —भागवतरहस्य-श्रीमद्भागवत स्कंध—१—गद्यपद्यात्मक टीका	५=००
४	,,	पंचमयष्टि— अलौकिक व्याख्यानमाला	२=००
५	,,	षष्ठयष्ठि—स्वमन्तव्यांश सिद्धान्त तुषार (हिंदी)	१=५०
६	,,	नवमयष्टि—अभंगकी गाथा	२=५०
७	,,	पदोंकी गाथा (भाग १—२)	५=००
८	,,	एकादशयष्टि संप्रदाय सुरतरु : (उत्तर विहार)	५=००
९	,,	चतुर्दशयष्टि—नारदभक्तिसूत्रभाष्य, प्रियलीला महोत्सव और सांख्यसुरेन्द्र (ओवी छंदोबद्ध)	५=००
१०	,,	पंचदशयष्टि—ईस्तवास्योपनिषद, प्रमादकल्लोळ, पतिव्रता चरितामृत, सुखपर्वनाटक इत्यादि प्रकरण ग्रंथ	५=००

अ. नं.		ग्रंथोंका नाम	किमत
११	सूक्तिरत्नावली-षोडशयष्टि नारदीयभक्तिसूत्रभाष्य,	बालवासिष्ठम्, शास्त्रसमन्वयः इत्यादि (संस्कृत)	५=००
१२	,,	सप्तदशयष्टि-सययोपदेश (समय समय पर अपने शिष्यों को श्रीमहाराजने जो उपदेश किया उनका संकलन)	५=००
१३	,,	अष्टादशयष्टि खंड-१	२=००
१४	,,	खंड-२ (हिंदी)	०=५०
१५	,,	योगप्रभाव (योगपर व्याख्याने) खंड १-३	५=००
१६	,,	श्रीक्षेत्र आळंदी महिमा (ओवी छंदबद्ध)	०=२५

—: प्राप्तव्यस्थान :—

श्रीज्ञानेश्वर संस्थान,
दहीसात, अमरावती
(महाराष्ट्र)

मधुर प्रकाशन,
गोपाल प्रिंटिंग प्रेस,
वाकररोड, नागपूर-२.
(महाराष्ट्र)

यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रज
कानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रज
कानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रज
कानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रज
कानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रज
कानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रज
कानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रज
कानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रज
कानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रज
कानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्
यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रज
कानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्   यथाव्रजगोपिकानाम्

नाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
व्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्र
नाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
व्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्र
नाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
व्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्र
नाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
व्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्र
नाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
व्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्र
नाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
व्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्र
नाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
व्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्र
नाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
व्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्र
नाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
व्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्र
नाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम्
व्रजगोपिकानाम् यथाव्रजगोपिकानाम् यथाव्र

हमारी प्रकाशनें

आविष्कार

१	अलौकिक व्याख्यानमाला	२=००
२	नित्यतीर्थ	०=२५
३	मधुराद्वैताचार्य श्रीगुलाबरावमहाराज इनका जीवन चरित्र खंड १	३=५०
४	,, २	३=७५
५	भक्तिपदतीर्थामृत (सार्थ)	१=५०
६	स्वमन्तव्यांशसिद्धान्ततुषार	१=५०

मधुर प्रकाशन

बडकस चौक, नागपूर २.